श्रीमद् भगवद्

"गीतगीता"

पद्यानुवादक

'कर्मयोगी' श्री राधाकृष्णदासजी महाराज

'गीतावाले'

आबू पर्वत

प्रकाशक व प्रचारक

अन्तर्राष्ट्रीय गीता प्रचार मंडल, आबू पर्वत

अखिल विश्व जय भगवान सेवा संघ–आबू पर्वत

तथा श्रीराधाकृष्ण सेवा आश्रम

(चौरुफागी) जयपुर

संकटमोचन श्री हनुमानजी की प्रेरणा से
मैंने गीताजी का पद्यानुवाद किया है। विश्व में
इस प्रकार की गीता का सर्व प्रथम प्रकाशन
हो रहा है। गुजराती भाई-बहनों के
लिए गुजराती लिपि में भी
है। मेरा दावा है जो
प्रतिदिन एक अध्याय
पढ़ेगा वह कभी
भी दुःखी नहीं
होगा।

— स्वामी श्री राधाकृष्णदासजी

*

प्रथम संस्करण १०००
चैत्र पूर्णिमा
३१ मार्च १९८०
श्रीहनुमानजयंती
द्वितीय संस्करण २०००
१० सितम्बर १९८०
तृतीय संस्करण
२६ जून : १९८३

भेंट
गीताजी के प्रचार प्रसार पुनः प्रकाशन तथा आश्रम की प्रगति हेतु आपका दान रु. ११ या अधिक

* मुद्रक : श्री रामानन्द प्रिन्टिङ्ग प्रेस कांकरिया रोड, अहमदाबाद-२२

श्रीमद् भगवद्‌गीता का पद्यानुवाद तो मैंने १९७४ में ही कर लिया था किन्तु समय स्थिति, परिस्थिति, तथा अर्थाभाव के कारण छपा नहीं सका था। आज अपने प्रेमी, सहयोगी व भक्तगणों के सतत सहयोग से प्रकाशित करके आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।

–श्री राधाकृष्ण दास

मां को समर्पण

आभार

पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्णजी की कृपा से उन्हीं के सदुपदेशों का भण्डार श्रीमद् भगवद्गीता के पवित्री श्लोकों को मैंने सरल हिन्दी में पद्य, छन्द एवं दोहो के माध्यम से अनुवाद करने का प्रयास किया है। विशिष्ट व्यक्तियों की अपेक्षा अल्प शिक्षित जनसाधारण तथा संस्कृत न पढ़े लोगों के लिए यह ग्रन्थ मुख्यतः उपयोगी होगा। संगीत-प्रेमी कथावाचकों के लिए तो यह अत्यंत प्रिय होगा। विश्व के कोने-कोने में गीता ज्ञान का पूर्ण प्रचार हो, यही मेरी कामना है। गीताजी के विषय में कुछ लिखूँ यह सूर्य का दीप दिखाना होगा, इसे तो आप स्वयं ही अन्दर पढ़कर देखेंगे। मेरा यह प्रयास आदि आप सबकी सेवा कर सके तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। किसी भी प्रकार का आपका सुझाव मेरी त्रुटियों को सुधारेगी। अतः स्वागत है।

गुजराती भाई-बहनों के लिए गुजराती लिपि में छपवाकर प्रस्तुत किया है। आज मैं जिस स्थिति, परिस्थिति तथा स्तर पर हूँ वह सब गीताजी की ही महिमा है। जिन महान पुरुषोंने इस कृतिको देखा, पढ़ा एवं सराहा है उन सज्जन भगवदस्वरूप विद्वानों का अत्यंत आभारी हूँ। आप हैं भारत के प्रसिद्ध विद्वान--

सारस्वत सार्वभौम पंडितराज श्री स्वामी भगवदाचार्यजी अहमदाबाद, परम दयालु, सन्त सेवक, सुशील एवं परमार्थी महन्त श्री स्वामी पंडित रामप्रपन्नाचार्यजी वेदान्ती श्री रामानुजकोट अहमदाबाद, श्री स्वामी नारायणदासजी महामंडलेश्वर वाडीगांव अहमदाबाद, श्री पंडित मनमोहनाचार्यजी महाराज अहमदाबाद, महंत स्वामी श्री जयरामदासजी,

डॉ. दयाराम पांडे, कर्मवीर श्रीरामकुमारदासजी शास्त्री अहमदाबाद, भारतविख्यात, मानस मार्तण्ड श्री प्रेमदासजी रामायणी अयोध्या, श्री महंत पंडित सीतारामाचार्यजी शास्त्री सेवा। परम परमार्थी, त्यागरूप विद्वान महात्मा श्री स्वामी नारायणदासजी गुरू श्री सन्तरामजी नडियाद, कोमलहृदयी सन्त श्री स्वामी अभेदानन्दजी तीर्थ, उदार चित्त दयालु मूर्ति परमार्थी महन्त श्री स्वामी युगलशरणजी ब्रह्मचारी वशिष्ठ आश्रम, आबू पर्वत, परम विद्वान मधुरभाषी एवं सुशील स्वामी ईश्वरानन्दजी आबू पर्वत तथा परम दानवीर धनाढ्य जन सेवक उदार चित्त, कोमल हृदयी धर्मात्मा एवं सन्त रूप सेठ श्री नन्ददासजी अचरतलालजी शाहीबाग अहमदाबाद, अनन्त श्री विभूषित परमार्थ भूषण परम विद्वान महन्त स्वामी श्री त्रिभुवनदासजी शास्त्री वैष्णवाचार्य जिनकी कृपा से मैं श्री रघुनाथजी मन्दिर आबू पर्वत में व्यवस्थापक के रूप में सेवारत हूँ, तथा अत्यंत शिष्ट व विद्वान सन्त स्वामी श्री भक्तानन्दजी श्री रामकृष्ण आश्रम आबू पर्वत का मैं अत्यंत आभारी हूँ जिन्होंने मुझे समय–समय पर सहयोग एवं प्रोत्साहन दिया है।

आशा है आप इस ग्रन्थ को अपनावेंगे और इससे लाभ लेंगे।

राधाकृष्णदासजी
श्री रघुनाथजी मंदिर
(आबू पर्वत)

भूमिका

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य में श्रीमद् भगवद्गीता का स्थान महत्तम है। जितने भी आचार्य हुये हैं प्रायः सभी ने गीता पर अपने-अपने मतानुसार भाष्य किया है, जैसे आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद पर, श्री रामानुजाचार्यजी ने विशिष्टाद्वैत पर, श्री मध्वाचार्य ने द्वैतवाद पर, श्री निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत पर, श्री वल्लभाचार्यजी ने शुद्ध-द्वैतवाद पर भाष्यों की परम्परा चलाई है। यह परम्परा अभी भी चालू है। जितने भी आचार्य इन विद्वानों के पश्चात् हुये हैं उन्होंने भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार गीता के ऊपर टीका-टिप्पणी की है। लोकमान्य तिलक ने कर्मयोग को लेकर एक विशाल टीका गीता पर की है। अतः यह स्वाभाविक ही कहा गया है कि-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

गीता ही सुगीता सुन्दर रीति से गाने योग्य है। जिसने गीता को जान लिया है उसको दूसरे शास्त्रों के विस्तारपूर्वक किये गये अर्थों से क्या प्रयोजन है जो गीता स्वयं पद्मनाभ भगवान के मुखकमल से निकली हुई सौरभ है उसी की सुगन्धि से मस्तिष्क तृप्त हो जाता है फिर अन्य सुगन्ध अर्थात् अन्य शास्त्रों की आवश्यकता ही नहीं रहती।

भारतीय दर्शन के मूल हैं उपनिषद। जिनमें केवल ब्रह्मज्ञान भरा हुआ है और उन्हीं उपनिषदों का सार है गीता। उपनिषदों की भाषा आर्य होने के कारण उनका समझना जरा कठिन है। परन्तु गीता

की भाषा सरल है साथ ही साथ भगवान श्रीकृष्ण की समझाने की शैली इतनी सुन्दर है कि सामान्य संस्कृतज्ञ भी समझ सकता है जो ज्ञान उपनिषदों में है वही ज्ञान गीता में है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्ध गोपालनन्दनः।
पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्ध गीतामृतं महत् ॥

उपनिषदरूपी गायों का दोहन करके गोपालनन्दन श्रीकृष्ण ने वह अमृत दूध (ग्यान–दुग्ध) वत्स अर्जुन को पिलाया, जिससे उनमें कर्म-पालन की शक्ति आयी और उसी शक्ति से शत्रु–विजय करके राज्य प्राप्त किया।

आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व पाश्चात्य लोकों की दृष्टि भारतीय साहित्य तथा उसके दर्शन पर पड़ी। जिस समय गीता का अध्ययन पाश्चात्य विद्वानों ने किया उसी समय यूरोप में एक विवाद खड़ा हो गया। बाइबिल से अधिकतम ज्ञान गीता में देखकर वे लोग आश्चर्यचकित रह गये।

गीता का कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञान इत्यादि का जब पाश्चात्य विद्वानों ने अध्ययन किया तो उनकी आँखें खुल गईं तब से ही उनमें भारतीय संस्कृति को जानने की तीव्र उत्कंठा जाग पड़ी। जर्मन तो बहुत से प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों को मुँह मांगा मूल्य देकर अपने देश में ले गए उनका पठन करके मैक्समूलर जैसे विद्वानों को कह देना पड़ा कि, विश्व का कल्याण करने में यदि कोई समर्थ है तो वह भारतीय संस्कृति ही है, आज तो पूरे यूरोप और अमेरिका के विद्वान गीता का अध्ययन करते हैं और उस पर अपने विचारों को लेखनी-बद्ध करते हैं।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गीता में किसी भी धर्म या मजहब के प्रति पक्षपात नहीं है जब कि दूसरे मजहबी ग्रन्थों में पूर्णतया पक्षपात भरा हुआ है। बाइबिल में ईसा और इसाई के प्रति कुरान में मुहम्मद और इस्लाम के प्रति अक्षरशः पक्षपात है इसके विरुद्ध गीता में केवल आत्मज्ञान है। उसमें आत्मा को नित्य और सत्य मानकर ही कर्म करने का मार्ग बतलाया गया है। इसमें किसी मत-विशेष को न मानकर केवल मानव धर्म का ही प्रतिपादन किया गया है। यह धर्म विश्व के सभी मानवों पर समान लागू पड़ते हैं यथा-

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ॥
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

किसी भी मानव को किसी भी जीवधारी से शत्रुता नहीं करना चाहिये, सबसे मित्रता रक्खे, हृदय में करुणा भरी हुई हो, अहंकार रहित, ममता रहित, सबमें दुःख सुखों को समान देखने वाला तथा क्षमावान बनकर संसार में रहे, वही भक्त है और ऐसा करना ही भक्ति है ऐसा सुन्दर सिद्धांत दुनियां के किसी भी धर्म ग्रन्थ में देखने को नहीं मिलेगा।

गीता का अनुवाद दुनियां की दो सौ से भी अधिक भाषाओं में हो चुका है। सभ्य समाज की लगभग इतनी ही भाषायें होंगी। गीता की मूल भाषा संस्कृत होने के कारण संस्कृत के अनभिज्ञों को एवं अल्प शिक्षित जनता को उसके समझने में कुछ कठिनाई पड़ती है। अनुबादक अपनी बुद्धि के अनुसार तथा मत के अनुसार शब्दों का अर्थ कहते हैं। अनेक प्रकार का भाव बताते हैं। गीता का

समझना तो ज्ञानियों के लिये भी असम्भव है केवल शब्द के मूलार्थ का भाव भी यदि पाठकों को होता रहे तो यही अधिक है ।

पाठकों की किसी कठिनाई को लक्ष्य में रखकर स्वामी श्री राधा-कृष्ण दासजी ने गीता के शब्दों का अर्थ हिन्दी भाषा में किया है। विशेषता यह है कि यह अर्थ पद्यमय है कारण कि आज ही नहीं अपितु प्रारम्भ से ही मानव की रुचि गायन तथा कविता की ओर अधिक रही है। संस्कृत साहित्य प्रायः पद्यमय ही है इसलिए इसो गीता का पद्यमय अनुवाद व्यक्ति के लिए आह्लादकारक तो है ही, साथ ही साथ इसमें सर्वगीता के श्लोकों का अर्थ भी आ जाता है। प्रचार, पाठ एवं अध्ययन की दृष्टि से भी यह उत्तम है। इसे जहाँ भी जन समूह में गाया जायेगा, शीघ्र ही असर करेगा ।

आशा है, जनता इसको अपनाकर अपने को तथा समाज को अपना कर्तव्य निर्धारण करने योग्य बनाएगी तथा इसका पूर्ण लाभ लेगी ।

पण्डितराज सारस्वत सार्वभौम
श्री १००८ स्वामी भगवदाचार्य (रामानन्दाचार्यजी)
अहमदाबाद.
तथा
पण्डित मनमोहनाचार्यजी
अहमदाबाद.
२५–८–१९७४

श्री गणेशस्तवनम्

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लंबोदराय सकलाय जगद्धिताय ।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥

नमस्तस्मै गणेशाय सर्वविघ्नविनाशिने ।
कार्यारम्भेषु सर्वेषु पूजितो यः सुरैरपि ॥

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ॥
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ॥
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामेसंकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्न वदनं ध्यायेत्सर्व विघ्नोपशान्तये ।

जपेतिगणपतिस्त्रोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत् ॥
संवत्सरेण सिद्धिं च लभतेण नात्र संशयः ॥

श्रीहनुमत्स्तवनम्

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्टम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥
वज्रांगं पिंगकेशाढ्यं स्वर्णकुण्डलमण्डितम् ।
नियुद्धमुपसंक्रम्य पारावारपराक्रमम् ॥
वामहस्ते गदायुक्तं पाशहस्तं कमण्डलम् ।
ऊर्ध्वदक्षिणदोर्दण्डं हनुमन्तं विचिन्तयेत् ॥
मर्कटेशं महोत्साहं सर्वशत्रुहरं परम् ।
शत्रुं संहार मां रक्ष श्रीमन्नंपदमुद्धर ॥

श्रीगोपालस्तवनम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं सहितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पदौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यंमधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥
गीत मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥

गुन्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीचिर्मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥
गोपी मधुरा लीलामधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥

गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं,
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः
वेदैर्यं सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थितद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो ।
यस्यान्तं न विदुः सुरा सुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्,
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम् ॥
मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्,
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

गीता के अट्ठारह नाम

गीता गंगा च गायत्री सीता सत्या सरस्वती ।
ब्रह्मविद्या ब्रह्मवल्ली त्रिसंध्या मुक्तमोहनी ॥

अर्धमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भयनाशिनी ।
वेदत्रयी परानन्ता तत्त्वार्थज्ञानमंजरी ॥

इत्येतानि जपेन्नित्यं नरो निश्चलमानसः ।
ज्ञानसिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथान्ते परमं पदम् ॥

श्रीगीतामन्त्रकान्यास

ॐ अस्य श्री मद्भागवद्गीतमालामंत्रस्य, भगवान् वेदव्यास ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीकृष्णः परमात्मा देवता, अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावदांश्चभाषसे इति बीजम्, सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजेति शक्तिः अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः इति कीलकम् ।

करन्यासकी विधि

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः इत्यंगुष्ठाभ्यां नमः
नचैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः इति तर्जनीभ्यां नमः
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽममक्लेद्योशोष्य एव च, इति मध्यमाभ्यां नमः
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः इत्यानामिकाभ्यां नमः
पश्य मे पार्थरूपाणि शतशोऽथसहस्रशः इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः
-नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च इति करतलकर-
पृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादि अंगन्यासकी विधि

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक इति हृदयाय नमः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः इति शिरसे स्वाहा
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च इति शिखायै वषट्
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः इति कवचाय हुम्
पश्य मे पार्थरूपाणि शतशोऽथसहस्रशः इति नेत्रत्रयाय वौषट्
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च इति अस्त्राय फट्

विनियोग

श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः इति संकल्पः

श्रीमद् भगवद्गीताका ध्यान–वन्दन

ॐ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतम् ।
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनी-
मम्बत्वामनुसंदधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ॥ १

महर्षि व्यास भगवान का वंदन

नमोऽस्तुते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र,
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालिते ज्ञानमयः प्रदीपः ॥ २

श्रीकृष्ण परमात्मा का वंदन

प्रपन्न–पारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः । ३

सर्वोपानिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः,
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत । ४

वसुदेवसुतं देवं कंस चाणूरमर्दनम्,
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम । ५

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गांधारनीलोप्तला
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेवाकुला
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी
सोत्तीर्णा खलु पांडवै रणनदी कैवर्तकः केशवः । ६

पाराशर्यवचः सरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटम्
नानाख्यानककेसरं हरिकथा—संवोघनावोधितम्;
लोके सज्जनषट्पदैरहररहः पेपीयमानं मुदा,
भूयाद्भारतपंकजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे.

मूकं करोति वाचालं पंगुं लघयते गिरिम्,
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् । ८

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्तिदिव्यैः स्तवै-
र्वेदैयः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो;
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरागणा देवाय तस्मै नमः ॥ ९

प्रभु के पावन शब्दों का अनुवाद इस पद में करता हूँ।
त्रुटियाँ यदि हो जाये तो मैं क्षमा याचना करता हूँ।
सद् उपदेशों को प्रभु के पहुँचाऊँ जन साधारण तक।
अनुवाद सरल है किया अतः कि पहुँचे यह सब जनता तक॥
संगीत साज पर साथ सके औ बड़ा सरल है गा सकते।
पाठ नियम से करें यदि तो जीवन सफल बना सकते॥
श्री राम कृष्ण शिव नाम सुमिरि प्रारम्भ गीत का करता हूँ।
गीता से गीत बना करके सबके सन्मुख अब रखता हूँ॥

"भाग छोट अभिलाषु बड़ करउं एक विश्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास॥"

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गन्धर्व।
बंदउँ किन्नर रजनिचर कृपा करहुँ अब सर्व॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी॥
सिय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

"बंदउ गुरु पद पदुम परागा"
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥

विनम्र—
श्री राधा कृष्णदासजी
'गीता वाले'

श्री गणेशाय नमः

श्री कृष्णगीता माहात्म्य

(१)

धरा उवाच –

धरा पूछती विष्णु से हे प्रभुवर मुझे सुनाइयेगा ।
कर्म भोगता हुआ जीव यह कैसे भक्ति पायेगा ॥

(२)

श्री विष्णु उवाच –

प्रारब्ध कर्म भोगता हुआ गीता में तत्पर सदा रहे ।
करता हुआ कर्म जग में वह सुखी और वह मुक्त रहे ॥

(३)

महा पातकी पापी यदि गीता अभ्यास जो सदा करे ।
पातक उसको छुवे नहीं ज्यों कमल पत्र जलवास करे ॥

(४)

जिस घर में गीता रहती है औ पाठ सदा ही होता है ।
सभी तीर्थ एक ठौर उपस्थित प्रयागादि पुण्य होता है ॥

(५)

देव ऋषि जन योगि जन पन्नग गोपी ग्वाल ।
नारद उद्धव पार्षद बसे वहाँ नन्दलाल ॥

(६)

जहाँ पाठ नित गीता का मैं सदा सहाय वहाँ करता ।
श्रवण मनन जहाँ होता है मैं केवल वास वहाँ करता ॥

(७)

गीता घर मेरा उत्तम है गीता के आश्रय रहता हूँ।
गीता ज्ञान के आश्रय से लोकों का पालन करता हूँ॥

(८)

गीता उत्तम विद्या मेरी ब्रह्मरूप निःसंशय है।
अर्धमात्र अक्षर अव्यय नित्या तथा अवर्णनीय है॥

(९)

चिदानंद श्रीकृष्ण के द्वारा कही गयी अर्जुन हित में।
रूप वेदत्रय आनन्दमय और है ये तत्वज्ञान हित में॥

(१०)

अष्टादश अध्याय का नित्य करे जो जाप।
ज्ञानसिद्ध औ मोक्ष मिले छूटे हैं भव ताप॥

(११)

असमर्थ यदि है पूरे में आधा ही नित पाठ करे।
सन्देह नहीं कुछ इसमें है गोदान पुण्य फल प्राप्त करे॥

(१२)

तृतीय अंश जो पाठ करे स्नान गंग फल पाता है।
छठा भाग यदि पाठ करे तो सोमयज्ञ फल पाता है॥

(१३)

हे वसुधा! यदि एक अध्याय या श्लोक एक जो पढ़ता है।
पूर्ण एक मनवन्तर तक वह मनुष्य देह में रहता है॥

(१४)

एक भाग नित पाठ करे दृढ भक्ति से यदि मन करके।
गंग स्वरूप हो रहता है वह रुद्र लोक में जा करके॥

(१५)

गीत के श्लोक दश पाँच सात या चार।
तीन दो एक अर्ध भी नित ही पढे सुधार॥

(१६)

वह चन्द्रलोक में वसता है संवत दश पूरे एक हजार।
गीता पढ़ते मृत्यु प्राप्त फिर मनुष्य रूप लेता अवतार॥

(१७)

कोई भी पापी गीता से अशक्ति रखे नित श्रवण करे।
आनन्द प्राप्त कर जीवन में पुनि विष्णुधाम में वास करे॥

(१८)

गीता अभ्यास जो सदा करे वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।
गीता कहता जी त्यागे वह उत्तम गति पा लेता है॥

(१९)

अनेक कर्म करता करता जो गीता को नित पढ़ता है।
जीवन से मुक्ति पा करके वह परमधाम पद पाता है॥

(२०)

जनकादिक राजा अनेक गीता के आश्रय रहने पर।
मोक्ष प्राप्त कर गये सभी गीता गीता के करने पर॥

(२१)

विना महात्म्य के पढ़ने पर जो गीता का यदि पाठ करे।
उसका वृथा पाठ गीता हैं केवल श्रम करता रहा करे॥

(२२)

महात्म्य सहित जो गीता का पाठ सदा ही किया करे ।
फल प्राप्त पाठ का करके वह फिर दुर्लभ गति को प्राप्त करे ॥

(२३)

श्री सूत उवाच—
महात्म्य सुना जो है ऋषियों वो आदि नित्य सनातन है ।
इसके पाठ अनन्तर नित जो पाठ करे फलदायक है ॥

इति श्री कृष्णगीता माहात्म्य समाप्त



श्री कृष्णाय नमः

प्रथम अध्याय

[दोनों सेनाओ के प्रधान प्रधान वीरों का वर्णन तथा स्वजन वध के पाप से भयभीत]

अर्जुन विषाद योग

गुरु गणेश रघुवीर सिय ब्रह्मा विष्णु महेश ।
'राधाकृष्ण' रचना करें सुमिरि शारदा शेष ॥

(१)

धृतराष्ट्र उवाच–
कुरुक्षेत्र के धर्मभूमि में रणइच्छा से एकत्रित हो ।
मेरे अरु पांडव पुत्रों ने किया जो संजय मुझे कहो ॥

दोनों सेनाओं के प्रधान प्रधान वीरों का वर्णन

(२)

संजय उवाच–
पांडव सेना देख के राजा दुर्योधन सोचने लगा ।
निज गुरुवर श्री द्रोण के सन्मुख जाकर यूँ कहने लगा ॥

(३)

हे द्विजवर देखो आकर कितनी विशाल ये सेना है ।
धृष्टद्युम्न तव शिष्य के द्वारा रची गयी ये सेना है ॥

(४)

शूर धनुर्धर वीर बड़े सभी हैं अर्जुन भीम समान ।
द्रुपद महारथ नृप विराट सात्यिक और हैं वीर युयुधान ॥

(५)

धृष्टकेतु औ काशिपति चेकितान पुरुजीत हैं।
कुन्तिभोज शैव्यादि श्रेष्ठ नृप अनेक रणजीत हैं॥

(६)

पराक्रमी युधामन्यु उत्तम मौजा सौभद्रपुत्र।
रण में सभी उपस्थित हैं द्रोपदी के भी पांच पुत्र॥

(७)

हे द्विजवर सुनिये तनिक, निज सेना के वीर।
जानो स्थिति तुम सही खड़े हैं, रण में ये जो वीर॥

(८)

आप स्वयं और भीष्म कृपा कर्ण विकर्ण महान हैं।
सोमदत्त भूरीश्रवा, अश्वत्थामा बलवान हैं॥

(९)

भटवीर बड़े हैं भिन्न भिन्न अस्त्र शस्त्र से सजे हुए।
मेरे हित मरने को तत्पर रण विद्या में मजे हुए॥

(१०)

मेरी सेना असमर्थविदित जिसकी भीष्म रक्षा करते।
शत्रु पक्ष की सैन्य पूर्ण है भीमसेन रक्षा करते॥

(११)

निज निज मोर्चों पर जाकर स्थित होकर खड़े रहो।
पिता भीष्म की रक्षा कर अपने जगहों पर डटे रहो॥

दोनों सेनाओं के द्वारा शंख ध्वनि

(१२)

इतने में श्रेष्ठ पितामह जी नृप कुरु को खुश करने लगे।
सिंह गर्जना की जैसे अपना शंख बजाने लगे॥

(१३)

शंख नगारे ढोल, मृदग एक साथ बजने लगा।
स्वर अपार त्रिलोक में महा भयंकर होने लगा॥

(१४)

श्वेत अश्व वाले रथ पर श्री कृष्णचंद अर्जुन बैठे।
लगे बजाने दिव्य शंख को निज रथ पर बैठे बैठे॥

(१५)

हृषीकेश ने पाँच जन्य को देवदत्त अर्जुन निज शंख।
महा भयानक भीम ने तुरंत बजाया पौंड्र शंख॥

(१६)

नृप युधिष्ठिर ने भी निज अनन्त विजय का घोष किया।
फिर नकुल सहदेव ने मणिपुष्पक सुघोष किया॥

(१७)

महा धनुर्धर काशिराज और रथी शिखंडी प्रचंड वीर।
धृष्टद्युम्न सात्यिक विराट अपराजित और अन्य वीर॥

(१८)

द्रुपद द्रोपदी सुत सभी रण में जो भी आये हैं।
हे राजन अभिमन्यु ने भी अपने शंख बजाये हैं॥

(१९)

विकराल ध्वनि उन शंखों का इतने जोरों से होने लगा।
धरा गगन पर फैल गया कौरव का उर काँपने लगा॥

अर्जुन के द्वारा सेना निरीक्षण

(२०)

कपि ध्वज अर्जुन ने निरखा सजी हुई कौरव दलको।
जो रण करने को उद्यत हैं देखा उनके भीषण दल को॥

(२१)

तब धनुष उठा कर हाथों में अर्जुन कहता मधुसूदन से।
बीच में रथ को खड़ा करें प्रभु देखूँगा निज नयनन से॥

(२२)

अर्जुन उवाच–
ताकी मुझे समझ आये किनसे–किनसे युद्ध करना है।
समर भूमि में आये हैं योद्धा जिनसे कि लड़ना है॥

(२३)

दुरबुद्धि नृपति कुरु हित करने जो रण करने को आये हैं।
निकट से देखूँगा उनको जो समर भूमि में आये हैं॥

(२४)

गुड केशकी बात सुन ऋषिकेश ने वहाँ किया।
दोनों सेना के मध्य में रथ ला कर झट खड़ा किया॥

(२५)

संजय उवाच–
भीषण द्रोण के सन्मुख ये वचन हुये थी भगवन के।
अर्जुन देखो दोनों दल को जो खड़ी हुई है बनठन के॥

(२६)

पिता पितामह बन्धु सखा देखा पारथ ने खड़ा सभी।
गुरु मामा सुत पोत्र मित्र भी यहाँ उपस्थित हुए सभी॥

(२७)

स्वजन ससुर को देख के अर्जुन निज अंतर सोचने लगा।
करुणा स्वर से अच्युत सन्मुख विनती कर यूं कहने लगा॥

मोह व्याप्त अर्जुन के विषाद, स्नेह और विरत सूचक वचन

(२८)

पारथ बोला हे मधुसूदन मेरा मुख सूखा जाता है।
स्वजनों को यूं देख के रण में अंग शिथिल हो जाता है॥

(२९)

मेरा अवयव काँप रहा जलता है मानो सकल शरीर।
गांडीव धनुष गिरता कर से होता है मन भी अति अधीर॥

(३०)

असमर्थ खड़ा रहने को केशव ऐसा मुझको लगता है।
मन में ऐसा भ्रम लगता अपशुकन दिखाई पड़ता है॥

(३१)

स्वजनों को यूं मार के रण में कल्याण नहीं दिखता कोई।
युद्ध विजय और राजभोग भी अच्छा नहीं लगता कोई॥

(३२)

है नहीं प्रयोजन किससे भी जीवन से अथवा सुख से भी।
राजपाट इच्छा सुख भी, है नहीं बडी जीवन से भी॥

(३३)

तन मन धन की आशा त्याग जो रण में आकर खड़े हुए।
गुरु पुत्र पितामह पिता तुल्य संग्राम हेतु सब डटे हुए॥

(३४)

मामा श्वसुर पौत्र साले यदि मारें जो मुझको रण में।
हे कृष्ण नहीं इच्छा मन में संहार करूँ इनका रण में॥

(३५)

यदि त्रिलोक का राज मिले वध करना भाता नहीं मुझको।
पृथ्वी राज्य की इच्छा से कुरु हनना भला नहीं मुझको॥

(३६)

अस्त्र सुसज्जित पापी को यदि मारूँगा तो भी माधव।
पाप मिलेगा अन्त में मुझको हन कर इनको भी माधव॥

(३७)

निज बांधव धृतराष्ट्र सुत क्या हनिये भगवान।
स्वजन को यूं मार के होगा पाप महान॥

कुलक्षय जनित दोषों का वर्णन

(३८)

ये सभी लुभाने लोभ से केवल मोह चक्र में पड़े हुए।
कुलक्षय का ध्यान त्याग के रण में आकर के सब खड़े हुए॥

(३९)

किन्तु विदित है हम सब को कुलक्षय से दोष क्या लगता है।
इसलिए युद्ध वर्जित करना ये बुद्धिमान को लगता है॥

(४०)

कुलधर्म सनातन गौरव जब सभी नष्ट हो जाता है।
धर्म नष्ट हो जाने पर अधर्म ही बस छा जाता है॥

(४१)

अधरम बढ़ने से केवल औरत व्यभिचारी बनती है।
फल इसके वर्णसंकर ही बस सन्तान वो पैदा करती है॥

(४२)

कुलक्षयी वर्णसंकर वंशज कुल सकल नरक ले जाता है।
तर्पण पिंडा से वंचित कुल, सब घोर नरक में जाता है॥

(४३)

वर्णसंकर करने वाले पातक नर सब बन जाते हैं।
जात धर्म कुल धर्म सभी बेशक नाशित हो जाते हैं॥

(४४)

सुना जनार्दन है मैंने जब धर्म नष्ट हो जाता है।
सभी पाप भागी होकर वह घोर नरक में जाता है॥

(४५)

धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि यदि मारेंगे मुझको रण में।
कल्याण हुआ समझूँगा मैं निःशस्त्र खडा हूँगा रण में॥

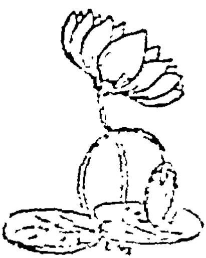
(४६)

हे राजन इतना कह कर अर्जुन उर शोक हुआ भारी।
निज धनुष बाण रखकर रण में बैठ गया मोहित भारी॥

श्री कृष्णार्जुन संवाद के प्रथम चरण का अन्त।
"राधा-कृष्ण" गीता शरण कल्मिष सर्व नशन्त॥

श्री मद् भगवद् कृष्णगीता उपनिषद् ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में
श्री कृष्णार्जुन संवाद में अर्जुन विषाद योग नामक
प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

ॐ तत् सत् इति



ॐ परमात्मने नमः

द्वितीय अध्याय

[अर्जुन को युद्ध के लिए उत्साहित करते हुए भगवान के द्वारा नित्यानित्य वस्तु के विवेचन पूर्वक सांख्ययोग, कर्मयोग एवं स्थिति प्रज्ञ की स्थितिऔर महिमा का प्रतिपादन]

सांख्ययोग

(१)

संजय उवाच-

संजय कह्यो=कुरु नृपति सों यहि भाँति अर्जुन दुख भयो ।
श्री कृष्णचन्द्र विहँसि भन्यो भारत हुआ यह ग्लानि क्यों ॥

(२)

श्री भगवान उवाच-

यह मोह रूपी दीन स्थित क्षेत्र रण में क्यों हुआ ।
निज पूर्वज से सृजित कीर्ति स्वर्ग वंचित ही हुआ ॥

(३)

कायरता तुम त्याग दो यह तुम्हारे नहीं योग ।
छोड़ कचाई हृदय उठ युद्ध करो विन लोभ ॥

(४)

अर्जुन उवाच-

किस तरह पितामह के ऊपर वार करूँगा मधुसूदन ।
द्विजवर द्रोण गुरुवर हैं ये कैसा है तव अनुमोदन ॥

(५)

गुरुजनों को मारना भगवन नहीं अति श्रेष्ठ है।
इस पापकर्म से भीख द्वारा पेट पालन श्रेष्ठ है॥
जो अर्थ लोलुप गुरु जनों को मार कर पापी बने।
सब भोग होंगे भोगने उनके रुधिर से ही सने॥

(६)

जीतेंगे मुझको वे कि हम, यह भी नहीं तो ज्ञात है।
इससे तो भी अनभिज्ञ हूँ अब उचित क्या क्या बात है॥
जीवित भी रहना है कठिन यदि मारता हूँ रणमें उन्हें।
धृतराष्ट्र के जो पुत्र रण में आ डटे हैं सामने॥

(७)

कायरपने के दोष से सुख भाव नष्टिन हो हुआ।
धर्म का भी भाव भ्रम से ही सकल मोहित हुआ॥
तव शिष्य शरण है दीनबन्धु उचित मो उपदेशिये।
कल्याणकारी कर्म क्या निश्चित कहें मेरे लिये॥

(८)

धनधान्य से पूरा भरा जग राज्य निष्कंटक मिले।
जीतिये सुरलोक यदि सुरराज्य भी हमको मिले॥
दिखाता नहीं कोई पतन कि शोक जिससे दूर हो।
इन्द्रियों को है सुखाती क्लेशकारी भी अहो॥

(९)

संजय उवाच–
हे राजन तब भारत ने श्री केशव से ये शब्द कहे।
नहीं करूँगा युद्ध दयानिधि चुप होकर प्रभु सम्मुख रहे॥

(१०)

शोकयुक्त पारथ को जब रणभूमि में देखा माधव ने।
हे कुरुपति हँसते हँसते ये वचन कहे श्री केशव ने॥

सांख्ययोग

(११)

श्री भगवान उवाच–

तू असोच्य का सोच करि कहत धीर सम बात।
नाशवान जीवन मरण ज्ञानी नहीं पछतात॥

(१२)

हम सब तुम और ये राजा सब, तो पहले भी थे ध्यान धरो।
अब भी हैं, होंगे मरके भी ये अमर जीव है ध्यान करो॥

(१३)

बाल, युवा और वृद्धापन ये तन के तीन अवस्था हैं।
मोह नहीं करते ज्ञानी नव तन को प्राप्त व्यवस्था हैं॥

(१४)

सभी इन्द्रियाँ मिल करके सुख दुःख का ज्ञान कराती हैं।
हे पारथ सब सहन करो ये नित्य नहीं सब जाती हैं॥

(१५)

हे पुरुष श्रेष्ठ मानव वह जो सुख दुख को एक समझता है।
व्यथित न होकर किससे भी वह मोक्ष गमन ही करता है॥

(१६)

जो सत है उसका नाश नहीं यदि असत्य वह मारता है।
इन दोनों का तत्त्व भेद ज्ञानी जन प्रगटित करता है॥

(१७)

पूर्ण जगत सब व्याप्त है जिसमें अविनाशी कहलाता है ।
नाश रहित इस जीव अंश का नाश नहीं हो जाता है ॥

(१८)

अंतवंत इस देह को जानो आत्मजीत है नित्य अमर।
अविनाशी है या क्या है मोह त्याग के युद्ध तू कर॥

(१९)

जो यह आत्मा को गिने, अ ार मरण सम जोय ।
मरै ना मारे यह मरै अज्ञानी वो दोय ॥

(२०)

कभी: न पैदा होता है न ही कभी ये मरता है।
अजर पुरातन नित्य जीव है नष्ट नहीं हमें हो सकता है ॥

(२१)

जो गिनता है आत्मा को अज अविनाशी नित्य सदा ।
कैसे हन सकता किसको या उसे भी मार कौन कदा ॥

(२२)

जिस तरह जीर्ण कपड़े को तजकर मनुज नवीन पहनाता है ।
तजकर जीव जीर्ण तन को उस तरह नवीन पहनता है ॥

(२३)

शस्त्र काट नहीं सकता अग्नि जला नहीं सकता ।
भिगा नहीं सकता पानी अरु वायु सुखा नहीं सकता ॥

(२४)

अरुप होने के कारण यह जल गल भीग नहीं सकता ।
संपूर्ण जगत में विस्तृत हो यह नित्य सनातन ही रहता ॥

(२५)

नर निज ज्ञान इन्द्रियों से इसको देख नहीं सकता ।
अलख अगोचर तत्त्व समझ के ऋषिजन सोच नहीं करता ॥

(२६)

महाबाहु यदि ये समझो यह मरता और जन्मता है ।
फिर भी तुमको उचित नहीं जो शोक हृदय में करता है ॥

(२७)

जग में जिसने जन्म लिया है निश्चय हो वह मरता है ।
मरके भी यह निश्चित है वह देह नया पुनि धरता है ॥

(२८)

प्रथम अदृश्य है जीव अंश मध्य दृष्टिगोचर होता ।
शोक न मानो हे पारथ अंत उसी में लय होता ॥

(२९)

आश्चर्य चकित हो कुछ ज्ञानी सुनते और निरखते हैं ।
सुनकर ऐसे भी हैं जो कि इसको नहीं समझते हैं ॥

(३०)

हे अर्जुन सब प्राणी में यह नित्य सदा अविनाशी है ।
मर्म जानकर भी तुममें छाई क्यों ये उदासी है ॥

क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध की उपादेयता

(३१)

निज धर्म कर्म विचार मर्म न खेद अन्तर कीजिये ।
क्षत्रियों का श्रेष्ठ धन है युद्ध रणमें कीजिये ॥

(३२)

यत्न बिन अवसर मिला है स्वर्ग सुख रण योग लो।
भाग्यशाली हो धनंज्य धर्म निज का भोग लो॥

(३३)

यदि कदाचित धर्मसू तू मोडेगा मुख।
यश कीरत से पापकर अधिक पायेगा दुख॥

(३४)

यदि तुम ऐसा करते हो तो अपकीर्ति ही होनी है।
श्रेष्ठ जनों को आपकीरति बस मरण तुल्य ही होनी है।

(३५)

जिन वीरों में मान्य हो तुम वो तेरी हंसी उड़ायेंगे।
पारथ रण से डर भाग गया वो निंदा करते जायेंगे॥

(३६)

दुर्वचन कहेंगे वैरी जन निंदित करने को हे अर्जुन।
इससे बढ़कर दुख का कारण जग में क्या होगा अर्जुन॥

(३७)

यदि तू हना गया रण में तो स्वर्ग लोक को जाता है।
विजय हुआ पृथ्वी सुख है तो युद्ध करो यही भाता है॥

(३८)

विजय पराजय लाभ हानि सुख दुख को एक तुल्य समझो।
युद्ध करो निज क्षत्रि धर्म है पाप नहीं होगा समझो॥

निष्काम कर्मयोग

(३९)

ज्ञान योग अब लो कह्यो कहूँ कर्म अब तोहिं।
जा बुद्धि के संयोग से कर्म बंध नहिं होहिं॥

(४०)

निष्काम कर्म के करने से कुछ दोष नहीं सुन लगता है।
न्यून दशा में होकर भी भवभय से रक्षा करता है॥

(४१)

इस कल्याण मार्ग में हे अर्जुन निश्चय ही बुद्धि एक होती।
सकाम कर्म में पुरुषों की वहु भाँति बुद्धि भिन्न होती॥

(४२)

सुन पांडु नंदन मन्दबुद्धि स्वर्ग सुख वहु मानते।
निज अर्थ स्वारथ प्रीति कर वो वेद ही को मानते॥

(४३)

स्वर्ग सुख की प्राप्ति में चित्त चंचल भोग महं।
योग तज मति मंद मानव रमत हैं दुरबुद्धि जहं॥

(४४)

भोग तथा ऐश्वर्य दो जिनका मन हर लेत।
एकचित्त हो बुद्धि भी नहीं समाधी देत॥

(४५)

सकाम त्रिगुण वेद अर्थ है हे अर्जुन निष्काम रहो।
योगक्षेम इच्छा तजकर तू सात्विक हो सुख दुख को सहो॥

(४६)

जिस तरह जलाशय बड़ी क्षुद्र में एक तरह जल रहता है।
उस तरह विद्‌जन वेदों से निज अर्थ हेतु जल भरता है॥

(४७)

तू अधिकारी कर्म हेतु है फल की चिन्ता मत करना।
कर्म करो फल त्याग के अर्जुन अकर्म इच्छा न करना॥

(४८)

असिद्ध सिद्ध को सम जानों मतनिष्ट हो कर्म करो।
गर्व त्याग समता समझो सत्पुरुष धर्म का कर्म करो॥

(४९)

बुद्धियोग से सकाम कर्म अर्जुन तुच्छ बहुत होती।
सब बुद्धि का शरण गहो फलकी इच्छा अति लघु होती॥

(५०)

पापपुण्य इस जगती में समबुद्धि को एक समान है।
हे अर्जुन निष्काम कर्म कर, ये जग में सुलभ महान है॥

(५१)

जो ज्ञानी समबुद्धि से कर्मों में फल का त्याग करे।
वो जन्म बंधसे मुक्ति प्राप्तकर परमधाम में वास करे॥

(५२)

मोह के दलदलसे अर्जुन जब बुद्धि तेरी तर जायेगी।
तब सुनी और सुननेवाली विषयों से विरक्ति होयेगी॥

(५३)

सन्देह मयी वह सुनने से जब होगी बुद्धि तेरी निश्चल ।
अटल समाधि तत्वज्ञान तब पायेगा तू योग अचल ॥

स्थितप्रज्ञ पुरुष के लक्षण और उसका महत्त्व

(५४)

अर्जुन उवाच–

जाकी बुद्धि स्थिर भई ताको चिन्ह बताव ।
चलत रहत किम भनत है केशव मुझे जनाव ॥

(५५)

भगवान उवाच–

संपूर्ण काम तज मन स्थित जिस समय मनुज स्थिर होता ।
आत्मरूप से आत्मा में उस समय ही स्थितप्रज्ञ होता ॥

(५६)

जिनको असक्ति नहीं सुख में दुखों से मन को क्लेश नहीं ।
स्थितप्रज्ञ मुनि कहते उसको भयराग क्रोध का लेश नहीं ॥

(५७)

नेह रहित सर्वत्र हुआ शुभ अशुभ की इच्छा नहीं करते ।
सुख विषाद में दुखित नहीं ऐसे को स्थिर बुद्धि कहते ॥

(५८)

जैसे कछुवा निज अंग समेट खैंच आप में लेता है ।
थिर खींचे विषयों से इन्द्रि निश्चल मन कर लेता है ॥

(५९)

गिरहारी नर विषय तजे पर चाह नहीं तज सकता है ।
परमातम अनुभव करके वह विषय चाह तज सकता है ॥

(६०)

मोक्ष अर्थ में यत्नशील पण्डित मन वश में करते हैं।
तो भी प्रबल इन्द्रियाँ जुट उनके मन को भी हरते हैं॥

(६१)

सभी इन्द्रियाँ वश में कर मुझ में कर पारायण जो होवे।
समभाव हुआ उस नर का यूं बुद्धि भी स्थिर तब होवे॥

(६२)

चिंतन विषय में करत नर आसक्ति शक्ति विराजती।
आसक्ति से उन विषय की मनकामना ही आवती॥
मनकामना की तृप्ति में यदि विघ्न पड़ता है कहीं।
हे पांडु नन्दन ध्यान कर उत्पन्न होता क्रोध ही॥

(६३)

क्रोध के उत्पन्न से सम्मोह मन में जन्मता,
सम्मोह से स्मरण शक्ति भ्रमित हो बुद्धि नष्टता।
बुद्धि नष्ट से भ्रमित नर का ज्ञान क्षय हो जाता है,
वह पुरुष जग में स्वयं ही निज श्रेय से गिर जाता है॥

(६४)

रागद्वेष से रहित हो इन्द्रियवश करि लेत।
विषयों का अनुभव करें शान्ति प्राप्त कर लेत॥

(६५)

इस प्रसाद के पाने से चित्त प्रसन्नित होती है।
दुःखों से उसको क्लेश नहीं बुद्धि भी स्थिर होती है॥

(६६)

बुद्धि हीन जो युक्त नहीं है उसमें आस्तिक भाव नहीं।
शान्ति चित्तसे वंचित हो है सुखभी उसको प्राप्त नहीं॥

(६७)

विषयों में जैसे सव इन्द्रिय, मोहित होकर खिच जाती है।
तिमि पुरुष वुद्धिका हरण करे जल नाव पवन ले जाती है॥

(६८)

इन्द्रियों के विषयों से अर्जुन इन्द्रिय जिसकी वश होती है।
ऐसी स्थित में महावाहु थिर वुद्धि उसी की होती है॥

(६९)

जो रात है सारे जीवों की जगते हैं उसमें ही योगी।
प्राणीमात्र का दिन है जो वह रात समझते हैं योगी॥

(७०)

जिस गहिर सिन्धु के अचल जल जलराशि जाके समात है,।
सरिता की अथवा प्रचुर वृष्टि क्षोभ नहीं कर पात है।
तिमि धीर वुद्धि पुरुष में सव वासना लय होत हैं,
शान्त सिद्धि प्राप्त हो वह मोक्ष पद पर होत है।

(७१)

तजके सकल मनकामना निज भावना निर्लोभ हो!
गर्व तज ममता रहित अरु भोग का न तो लोभ हो।

निस्पृह पुरुष हो वह इस तरह जिसके किये सब त्याग है।
शान्त सिद्धि प्राप्त हो वह मोक्ष पर जाता है॥

(७२)

ब्रह्मज्ञान पारथ कह्यो जिन्हने मोह नशाय।
यह निष्ठा थिर अन्त में ब्रह्मलोक ले जाय॥

इति द्वितीय अध्याय समाप्तः

ॐ तत् सत् इति

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

तृतीय अध्याय

[ज्ञानयोग और कर्मयोग आदि समस्त साधनों के अनुसार कर्तव्य कर्म करने की आवश्यकता का प्रतिपादन स्वधर्म पालन की महिमा तथा काम निरोध के उपाय का वर्णन]

कर्मयोग

(१)

अर्जुन उवाच–

हे केशव जब कर्मयोग से ज्ञानयोग उत्तम कहते।
तो हिंसा रूपी कर्मयोग में मुझको प्रेरित क्यों करते॥

(२)

संशय मिश्रित वाक्य बोल के मुझको भरमाते क्यों हो।
निश्चय कर उपदेश करो दोनों में मंगलमय जो हो॥

(३)

श्री भगवान उवाच–

पुर्व के वर्णन में मैंने दोनों निष्ठा की बात कही।
सांख्ययोग ज्ञानी को और योगी को है कर्मयोग कही॥

(४)

कर्म किये बिन हे अर्जुन निष्कर्म ज्ञान नहीं हो सकता।
ज्ञान बिना संन्यास नहीं फिर मोक्ष सिद्ध नहीं हो सकता॥

(५)

कोई प्राणी क्षण भर भी रह सकता नहीं क्रिया रहित।
प्रकृति से उपजे गुण हैं जो ये करवाते हैं कर्म अमित॥

(६)

कर्म इन्द्रियाँ रोक के जो मन विषय का चिंतन करते हैं।
ऐसे मूरख पाखंडी को मिथ्याचारी ही कहते हैं॥

(७)

जो चित्त से इन्द्रिय वश में कर अर्जुन आसक्ति नहीं रखते।
कर्म इन्द्रिय से कर्म करे उन्हें श्रेष्ठ पुरुष जग में कहते॥

(८)

है शास्त्र नियत वो कर्म करो अकर्म से कर्म भला अर्जुन।
कर्म किये विन इस जग में जीवन निर्वाह कठिन अर्जुन॥

यज्ञादि कर्म करने की आवश्यकता

(९)

जो कर्म यज्ञ के निमित्त नहीं उसे युक्त कहो।
आसक्त रहित हो कर्म करो जो विधि के हों अनुकूल अहो॥

(१०)

रच सृष्टि श्रीब्रह्मा ने प्रजा से ऐसी बात कही।
मन वांछित फल प्राप्त करो यज्ञादि कर्म के द्वारा ही॥

(११)

उन्नति करो यज्ञ से सुर की वे तुमको उन्नत कर देंगे।
दोनों की वृद्धि परस्पर हो तो कल्याण तुम्हारा कर देंगे॥

(१२)

तुष्ट हुए यज्ञों से सुरगण, देते हैं नाना भोगों को।
जो उनको अर्पण बिन पाते तो चोर कहो उन लोगों को॥

(१३)

यज्ञ शिष्ट भोजन खाकर पापों से मुक्ति पाते हैं।
विना यज्ञ अन्न सिद्ध करे वो पाप भक्ष ही खाते हैं॥

(१४)

अन्न से उत्पत्ति प्राणी की, अन्न वृष्टि से होता है।
वृष्टि होनी है यज्ञों से, पर यज्ञ कर्म से होता है॥

(१५)

उत्पत्ति कर्म की वेदों से ब्रह्म वेद का कर्ता है।
ब्रह्म सर्व व्यापी है वह, यज्ञों में स्थित रहता है।

(१६)

वेद निहित शुभ कर्मको, पारथ करे न जोय।
इन्द्रिय वश पापी भये, वृथा जनम है खोय॥

ज्ञानवान और भगवान के लिये भी लोक संग्रहार्थ कर्म करने का प्रतिपादन

(१७)

प्रीत है जिसको आत्मा से आत्मा में हैं तृप्ति उसे।
सन्तुष्ट आत्म से जो नर है आवश्यक नहीं है कार्य उसे॥

(१८)

उसे न स्वारथ किसी कार्य से करे न यदि तो हानि नहीं।
मात्र चराचर में आवश्यक उसे है कोई स्वार्थ नहीं।

(१९)

अतएव सदा आसक्त रहित होकर के अर्जुन कर्म करो।
जो निरासक्त हो कर्म करे है मोक्ष उसे ही ध्यान करो॥

(२०)

जनक आदि जैसे ज्ञानी तो कर्मों से ही सिद्ध हुए।
इसलिए जगत कल्याण हेतु है कर्म तुझे अब उचित हुए॥

(२१)

जो जो कर्म श्रेष्ठ जन करते वही दूसरे करते हैं।
जो प्रमाण ज्ञानी मानें बस लोग उसी पर चलते हैं॥

(२२)

तीन लोक में है पारथ मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं।
अप्राप्त नहीं इच्छित मुझको फिर भी कर्मों से अलग नहीं॥

(२३)

आलस्य त्याग करके पारथ, मैं ना करुं यदि कर्मों को।
तो मेरा अनुयायी जग सारा तज देगा सब कर्मों को॥

(२४)

मैं न करुं यदि कर्म जगत में सब लोक नष्ट हो जायेंगे।
वर्णसंकरों का कर्ता अरु प्रजा हनक कहलायेंगे॥

ज्ञानी और अज्ञानी के लक्षण तथा राग द्वेष रहित कर्म के लिये प्रेरणा

(२५)

फल इच्छा से ज्यों मूरख कर्म जगत में करते हैं।
वैसे ही निरासक्त ज्ञानी बस कार्य लोकहित करते हैं॥

(२६)

कर्मासक्ति मूढ जनों की मति न भ्रमित करना चाहिए।
ज्ञानवान निज कर्म करें उनसे भी करवाना चाहिए॥

(२७)

प्रकृति गुणों के द्वारा ही होते हैं जग के कर्म सभी।
पर "मैं कर्ता हूँ" कहता है मूरख अभिमानी व्यक्ति सभी॥

(२८)

गुण और कर्म विभाग तत्त्व ज्ञानी जाने आसक्त नहीं।
गुण का खेल गुणों में होता ज्ञानी उसमें रक्त नहीं॥

(२९)

जो प्रकृति गुणों से मोहित है आसक्त हुए गुण कर्मों से।
ज्ञानी उन मूर्ख मनुष्यों को विचलित न करे निज कर्मों से॥

(३०)

ध्यान निष्ठावान बन मुझे कर्म सब अर्पण करो।
आशा रहित ममता रहित हो पार्थ उठो रण करो॥

(३१)

तज दोष जो श्रद्धा रखे मत अनुसरत है नित्य ही।
वो नर है पाते सहज ही जग कर्म बन्ध से मुक्ति ही॥

(३२)

जो निंदहि मत मोर सुन नहिं स्वीकारैं काय।
वो अविवेकी भ्रमित हो नष्ट भ्रष्ट हो जाय॥

(३३)

ज्ञानवान निज प्रकृति अनुरूप कर्म चेष्टा करता है।
तो हठ क्या है जब प्राणिमात्र निजस्वभाव आचरता है॥

(३४)

निज निज विषयों में अर्जुन इन्द्रियों का रहता राग और द्वेष।
उचित नहीं है वश होना ये मोक्ष शत्रु देते हैं क्लेश॥

(३५)

अपना धर्म श्रेष्ट मानो चाहे हो नीचा गुणवाला ।
परधर्म भयानक तुल्य निज धर्म का हो पालनवाला ॥

पाप में कारण काम, और काम के निरोध का साधन

(३६)

अर्जुन उवाच–

तो किससे प्रेरित होकर के नर पाप कर्म करता माधव ।
जब नहीं चाहता उसे करे फिर भी वह करता है माधव ॥

(३७)

श्री भगवान उवाच–

काम विफल हो क्रोध बने जिसकी उत्पत्ति रजोगुण से ।
यह पापी है भोगी है इसको वैरी जानों मन से ॥

(३८)

ज्यों धुआं ढांकता अग्नि को शीशा ढंकता है धूलों से ।
झिल्ली से गर्भ ढके जैसे त्यों ज्ञान काम के शूलों से ॥

(३९)

ज्ञानी का वैरी काम सदा अग्नि सम तृप्त नहीं रहता ।
हे कौन्तेय है काम प्रबल ज्ञानी का ज्ञान ढँका रहता ॥

(४०)

सम्पूर्ण इन्द्रियां मन बुद्धि ये काम का पैदा करते हैं ।
ढांक ज्ञान को इनसे ही आत्मा को मोहित करते हैं ॥

(४१)

इसलिए पार्थ सबसे पहले इन्द्रियों को वश में कर लो तुम ।
विज्ञान ज्ञान के हरता को पापी को दूर कर हन लो तुम ॥

इस देह से हे कुतिनन्दन इन्द्रियाँ ही श्रेष्ठ है।
इन्द्रियों से प्रवल मन उससे भी अधिक श्रेष्ठ है।

(४२)

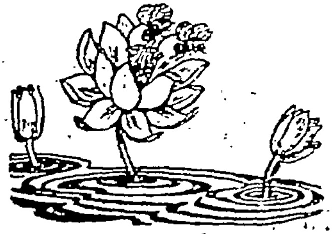
मन से वढकर कुछ भी है तो वुद्धि वस ही श्रेष्ठ है।
बुद्धि से यदि श्रेष्ठ है तो आत्मा ही श्रेष्ठ है॥

(४३)

वुद्धि से आतम श्रेष्ठ लखि, मन को कर वश मांहि।
काम रूपी शत्रु को अर्जुन हन चित मांहि॥
श्रीकृष्णर्जुन सम्वाद के तृतीय चरण का अन्त।
'राधाकृष्ण' गीता भनो भव भयसे कर लो अन्त॥

इति तृतीय अध्याय समाप्त

ॐ तत् सत् इति



श्री केशवाय नमः

चतुर्थ अध्याय

[अवतार रहस्य, सगुण भगवान का प्रभाव निष्काम कर्म योग तथा योगी महात्मा पुरुषों के आचरण और उनकी महिमा वर्णन करते हुए विविध यज्ञों एवं ज्ञान की महिमा का वर्णन]

ज्ञानकर्म संन्यास योग

अवरता रहस्य एवं निष्काम कर्मयोग

(१)

श्री भगवान उवाच–

कर्मयोग यह सूर्य को मैंने प्रथम सुनाय।
रविने मनु मनुने कह्यो इक्ष्वाकु सुत जाय॥

(२)

परम्परा है योग की जानत हैं ऋषिराय।
वहुत काल के बीतवे सो यह योग नशाय॥

(३)

उसी पुरातन योग को अर्जुन मैंने तुजसे आज कहा।
भक्त सखा दोनों तू है यह गुप्त भेद इसलिए कहा॥

(४)

अर्जुन उवाच–

आपसे पहले जन्म सूर्य का केशव तुमने मुझे कहा।
कैसे मानूंगा इसको कि पहले रवि से योग कहा॥

(५)

श्री कृष्ण उवाच—

वहुत जन्म तेरे मेरे हुए हैं अर्जुन तू अज्ञान।
वे सव ज्ञात मुझे है लेकिन तू है भली भाँति अन्जान॥

(६)

अज अविनाशी यद्यपि हूँ प्राणीयों का ईश कहाऊँ मैं।
निज प्रकृति आधीन करूं फिर माया से प्रकटाऊँ मैं॥

(७)

जव जव होती हानि धर्म की अधर्म जव छा जाता है।
तव तव हे भारत देह रूप में, अवतार मेरा हो जाता है॥

(८)

साधुजनों के रक्षा हित पापियों का करने हेतु दमन।
धर्म स्थापन के हित में युग युग में प्रकट होऊँ धरतन॥

(९)

दिव्य जन्म कर्मों का मेरे तत्त्व जान लेते हैं जो।
देह त्याग मुझमें मिलते फिर जन्म नहीं लेते हैं वो॥

(१०)

राग क्रोध भय त्याग अनेकों मुझमें ही आशक्त हुए।
तप औ ज्ञान से पावन हो वहु मुझमें ही लवलीन हुए॥

(११)

पार्थ मुझे जो जैसे भजते उस तरह से उनको मैं भजता।
वुद्धिमान सव तरह मार्ग मेरा ही है पालन करता॥

(१२)

जो कर्म सिद्धि की इच्छा से इस लोक में देवों को पूजे ।
कर्म सिद्धि तो शीघ्र मिले उनको जो देवों को पूजे ॥

(१३)

गुण और कर्म विभाग भेद से चारों वर्ण बनाया है ।
उनका कर्ता मुझको जानो अव्ययी अकर्ता माया है ॥

(१४)

कर्मलिप्त मुझको नहीं करते नहीं फलकी इच्छा कोई ।
जो इस भाँति मुझे जाने कर्मों से बँधता न कोई ॥

(१५)

यही जानकर मोक्ष हेतु है पूर्व जनों ने कर्म किये ।
यही करो तुम भी अर्जुन जो श्रेष्ठ जनों ने पूर्व किये ॥

(१६)

अकर्म कर्म तत्व क्या है इस विषय में ज्ञानी भरमाते ।
मैं उन कर्मों को कहता हूँ जो भव से मुक्ति करवाते ॥

(१७)

प्रथम ज्ञान करलो पारथ अकर्म कर्म रूप क्या है ।
गहन अधिक कर्मों की गति तो निषिद्ध कर्म जानो क्या है ॥

(१८)

जो अकर्म देखे कर्मों में अकर्म में कर्म विलसता है ।
यह सब मानव में ज्ञानी है अरु सब कर्मों का करता है ॥

योगी महात्मा पुरुषों के आचरण और उनकी महिमा

(१९)

संपूर्ण कार्य जिनके अर्जुन संकल्प काम तज होते हैं।
ज्ञान अग्नि से दग्ध कर्म वह पंडित ज्ञानी होते हैं॥

(२०)

जो कर्म फलों में इच्छा तज तृप्ति निराश्रय रहते हैं।
प्रवृत्ति हुआ सब कर्मों में फिरभी नहिं कुछ करते हैं॥

(२१)

आश त्याग परिग्रह त्यागी जिसने मनको वश में किया।
देह मात्र ही कर्म करे उसने सद्गति को प्राप्त किया॥

(२२)

अपने आप जो प्राप्त हुआ संतुष्ट है उसमें द्वन्द्व रहित।
असिद्धि सिद्धि को एक गिने करके भी कर्म है बन्ध रहित॥

(२३)

मुक्त काम और संग रहित ज्ञान लगाये चित्त।
यज्ञ कार्य जो कर्म करे कर्म विलीनहिं नित्त। ॥

फल सहित विविध यज्ञों का वर्णन

(२४)

अर्पण ब्रह्म ब्रह्म हवि है ब्रह्म अग्नि हवन किया।
सब कर्म ब्रह्ममय बुद्धि है उसने ही ब्रह्म को प्राप्त किया॥

(२५)

ब्रह्म के बदले कुछ योगी देवता के लिऐ यज्ञ करते।
ब्रह्म अग्नि में करते ज्ञानी कुछ यज्ञ रूप चिंतन करते॥

(२६)

कर्ण आदि इन्द्रियों का कोई संयमाग्नि में होम करे ।
शब्दादिक विषयों को कोई इन्द्रि अग्नि में हवन करे ॥

(२७)

सम्पूर्ण इन्द्रि के कर्मों को और प्राण कर्म को भी कोई ।
ज्ञान प्रकाशित ईश स्थित अग्नि में होम करे कोई ॥

(२८)

द्रव्य यज्ञ और तप यज्ञ करता है कोई योग यज्ञ ।
तीक्ष्ण व्रती स्वाध्याय यज्ञ करता है कोई ज्ञान यज्ञ ॥

(२९)

होम प्राण का कर अपान में हवन अपान प्राण में करे ।
रोक गति दोनों का कोई कितने तो प्राणायाम करे ॥

(३०)

मित अहारी कुछ योगी प्राणों का प्राणमें हवन करे ।
यज्ञों से जिनका पाप नष्ट जाने यज्ञों को मनन करे ॥

(३१)

यज्ञ शेष अमृत के भोगी ब्रह्म सनातन पाते हैं ।
बिना यज्ञ लोक नहीं परलोक भी छिने जाते हैं ॥

(३२)

यज्ञ अनेकों का वर्णन वेदों में है विस्तार किया ।
जिसकी उत्पत्ति कर्म से है यदि जाने तो भवपार किया ॥

(३३)

सुनो परंतप द्रव्य यज्ञ से ज्ञान यज्ञ है श्रेष्ठ अधिक ।
सभी कर्म लय होते हैं ज्ञान में सब है यही अधिक ॥

ज्ञानी की महिमा

(३४)

ज्ञानी और तत्वदर्शी उपदेशेंगे तुझे तत्वज्ञान ।
कर प्रणाम सेवा कर उनकी प्रश्नो से यह पूछो ज्ञान ॥

(३५)

इसे जानकर हे पांडव फिर मोह नहीं होगा तुममें ।
फिर सभी जीव को देखोगे अपने में और एक मुझमें ॥

(३६)

पापियों से वढकर भी पापी यदि पारथ हो जायेगा ।
ज्ञानरूप नौका चढ़ निश्चय पापों से तर जायेगा ॥

(३७)

जिस तरह अग्नि की ज्वालायें लकड़ी को जला भस्म करती ।
वैसे ही ज्ञान रूप अग्नि कर्मों को जला नष्ट करती ॥

(३८)

ज्ञान से बढ़कर इस जग में है कोई वस्तु नहीं पावन ।
कर्मयोग चिरकाल किये तो स्वयं प्रकाश करे निजमन ॥

(३९)

इन्द्रियजीत श्रद्धावाले गुरुभक्त ज्ञान पा जाते हैं ।
ज्ञान प्राप्त कर तुरन्त शांति और मोक्ष प्राप्त कर जाते हैं ॥

(४०)

ऐसे मूरख मिट जाते हैं जिनमें श्रद्धा विश्वास नहीं ।
सन्देही को इस जग में या उस जग में कल्याण नहीं ॥

(४१)

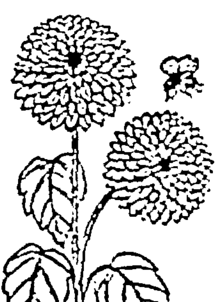
सब कर्म को अर्पण करे निज ईश को दृढ़योग से।
संशय सकल है नष्ट जिनमें ज्ञानयोग अनुसरण से॥
श्रद्धा सहित संशय रहित उस आत्मज्ञानी पुरुष को।
कर्म बंधन हे धनंजय होत नहिं उस पुरुष को॥

(४२)

उर उपजे अज्ञान को ज्ञान खड्ग से मार।
रणमें तत्पर हो भारत योग करो उरधार॥
श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद के चतुर्थ चरण का अन्त।
'राधाकृष्ण' प्रभू भजन से कर्म वन्ध से अन्त॥

इति चतुर्थ अध्याय समाप्तः

ॐ तत् सत् इति



ॐ पुरुषोत्तमाय नमः

पंचमो अध्याय

[सांख्ययोग, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्ति सहित ध्यान योग का दर्शन]

कर्म संन्यास योग

सांख्ययोग निष्काम कर्मयोग का निर्णय

(१)

अर्जुन उवाच–

कहते हो कर्मयोग उत्तम है कृष्ण कभी संन्यास कहो ।
निश्चय कर उपदेश करो जो इन दोनों में उत्तम हो ॥

(२)

श्री भगवान उवाच–

संन्यास और यह कर्मयोग दोनों ही करते हैं कल्यान ।
पर दोनों में जो है हितकर, वह केवल है कर्मयोग महान ॥

(३)

जिसमें द्वेष नहीं इच्छा वही नित्य संन्यासी है ।
द्वन्द रहित वह महाबाहु है बन्ध मुक्त सुखवासी है ॥

(४)

योग और संन्यास मार्ग में मूरख अन्तर करते हैं ।
दोनों में एक भला साधे दोनों का फल पा सकते हैं ॥

(५)

जो पद मिलता ज्ञानमार्ग से वही योग से मिलते हैं ।
जो सांख्य, कर्म को सम देखे तो ज्ञानी उसको कहते हैं ॥

(६)

कर्म विना संन्यास मिले है ये अधिक कठिन अर्जुन ।
पर कर्मयुक्त मुनि ब्रह्मलाभ कर लेता है सुनले अर्जुन ॥

सांख्य योगी और निष्काम कर्मयोगी के लक्षण और उनकी महिमा

(७)

योग से चित्त शुद्ध मन अरु इन्द्रियों पर विजय है,
निज आत्मा को अन्य सम माने कि एकय सवय है ।
परमात्म निष्ठो कर्मयोगी कर्म यदि वह करत है,
निज कर्म करते भी हुऐ नहिं कर्म उसको लिपत है ॥

(८)

तत्ववेत्ती योगियों के उरमें हो बस धारणा ।
देखें सुने सूंघे छुएं जायें कहीं यदि कामना ॥

(९)

खाते हुऐ सोते हुऐ करते हुऐ यदि स्वांस ले ।
तो भी ये जाने मैं नहीं करता हृदय में ठान ले ॥

(१०)

देते लेते बोलते, खोलत मूंदत नैन ।
इन्द्रिय निज विषयन लगो मन सों ऐसो लैन ॥

(११)

तज आसक्ति कर्मों को सब अर्पण ब्रह्म को जो भी करे ।
पाप नहीं छूता उसको जिमि कमल पत्र जल वास करे ॥

(१२)

आत्मशुद्धि के हेतु योगिजन कर्म संग तज करता है ।
इन्द्रिय तन मन बुद्धि से, दृढ़ होकर के वह करता है ॥

(१३)

फल तज कर्म करे जो योगी निश्चय अटल शान्ति पाता ।
किन्तु सकामी फल लोभी इच्छा में ही बँध जाता ॥

ज्ञानयोग

(१४)

मनसे संन्यास जितेन्द्र नर नव द्वार देह में रहता है ।
करता नहीं करा के कुछ वह परमानन्द में रहता है ॥

(१५)

जीवों के कर्म और कर्तापन को ईश्वर उत्पन्न कभी न करे ।
और नहीं संयोग कर्म फल प्रकृति ही सब स्वयं करे ॥

(१६)

ईश्वर ग्रहण नहीं करता लोगों का पाप व पुण्य कभी ।
ज्ञान ढंका अज्ञान से केवल मोहित है इसलिए सभी ॥

(१७)

आत्मज्ञान के द्वारा लेकिन नष्ट हुआ जिनका अज्ञान ।
सूर्य सदृश वह ज्ञान प्रकाशित कर देता है परमेश्वरज्ञान ॥

(१८)

तद्बुद्धि तदात्म पुरुष तन्निष्ठ जो ब्रह्मपरायण होते हैं ।
आत्मज्ञान से पाप मुक्त हो परम गति को पाते हैं ॥

(१९)

विद्या विनय युक्त ब्राह्मण गो हाथी कुत्ता और चंडाल ।
समदर्शी होकर ज्ञानी कुछ भेद नहीं करते उर ख्याल ॥

(२०)

मन स्थिर जिनका समता में जीतेजीत लिया संसार ।
दोष रहित सम ब्रह्म रूप है ब्रह्म में उनका बस आधार ॥

(२१)

प्रिय वस्तु पाके सुखी न हो अप्रिय में दुखी न होता है ।
संशय रहित ब्रह्मविद को बुद्धि ब्रह्म में स्थिर होता है ॥

(२२)

बाह्य भोग से रहित व्यक्ति वह आत्मानन्द पा जाता है ।
ब्रह्म योग में युक्त व्यक्ति वह अक्षय सुख पा जाता है ॥

(२३)

सभी भोग हैं दुखके कारण विषयों से उत्पन्न हुए ।
आदि अन्त उनका होता ज्ञानी नहीं उसमें रमे हुए ॥

(२४)

काम क्रोध के वेग को अर्जुन जीतेजी जो जीत लिया ।
है पुरुष वही योग जग में उसने ही सुख को प्राप्त किया ॥

(२५)

अन्तर सुखवाला ज्ञानी अन्तर में पाता है आराम ।
है ब्रह्मनिष्ठ ऐसा योगी वो पाता शान्त ब्रह्म का धाम ॥

(२६)

निष्पाप संयमी ऋषिगण जिनमें संशय भेद नहीं आते ।
सब हितकारी योगी वो निर्वाण ब्रह्म पद पर जाते ॥

(२७)

कामक्रोध को त्याग यती जिसने मन को जीत लिया ।
आत्म तत्व का ज्ञानी बन ब्रह्मानन्द उसने प्राप्त किया ॥

भक्ति युक्त ध्यान योग तथा भगवान की सर्व सुहृदयता

(२८)

इन्द्रियन के सब विषय को मन से जो बाहर करे ।
भौंहों के मध्य में दृष्टि स्थिर प्राण अपान को सम करे ॥

(२९)

जीतले मन बुद्धि इन्द्रिय मोक्ष परायण मुनि है ।
क्रोध इच्छा राग भय से रहित उनकी मुक्ति है ॥

(३०)

तप यज्ञ सबका भोगनेवाला भगत जो जानता ।
सम्पूर्ण जग के ईश्वरों का ईश मुझको जानता ॥
इस तत्व को जो जानते मुझमें सकल जग व्याप्त है ।
उसे ब्रह्म ज्ञानी पुरुष को बस ब्रह्म शान्ति प्राप्त है ॥
श्री कृष्णर्जुन सम्वाद के पाँचवे चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' गीता भने भव भय का हो अन्त ॥

इति पंचमो अध्याय समाप्त

ॐ तत् सत् इति

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

छठवाँ अध्याय

[निष्काम कर्मयोग का प्रतिपादन करते हुए आत्मोद्धार के लिये प्रेरणा तथा मनो निग्रह पूर्वक ध्यानयोग एवं योग भ्रष्ट की गति का वर्णन]

आत्म संयमयोग

निष्काम कर्मयोग का स्वरूप और योगरुढ़ पुरुष के लक्षण

(१)

अर्जुन उवाच–

मात्र अग्नि के त्याग से केवल होता नहीं है संन्यासी ।
जो निरासक्त कर्तव्य करे वह योगी है और संन्यासी ॥

(२)

जिसको कहते हैं संन्यास योग भी उसको जानो तुम ।
संकल्प त्याग बिन कोई भी हो या सका न योगी मानो तुम ॥

(३)

योग मार्ग के इच्छित मुनि को कर्मयोग ही साधन है ।
शान्ति प्राप्त के मंगल पथ का कर्म त्याग ही साधन है ॥

(४)

इन्द्रि विषय और कर्मों में आसक्त रहित जो होता है ।
संकल्प सर्व का त्यागी ही योगरुढ़ वही होता है ॥

आत्मोद्धार के लिये प्रेरणा और भगवद् प्राप्त पुरुष के लक्षण

(५)

निज विवेक से आत्मा का मानव उद्धार स्वयं करे ।
यही मित्र है यहि शत्रु है अधोगति में नहीं परे ॥

(६)

जो आत्म से आत्मा को जीते आत्मा ही बन्धू है उसका ।
जो नर जीत सका नहिं निज को आत्मा ही शत्रू उसका ॥

(७)

मान मिले अपमान मिले सुख दुःख अथवा शीतोष्ण मिले ।
आत्मजयी उस शान्त व्यक्ति में ईश समाहित सदा मिले ॥

(८)

शास्त्रज्ञान अनुभव से जो औ मन इन्द्रिय से तृप्त हुआ ।
पत्थर कंचन मिट्टी सम है बस वही योग से मुक्त हुआ ॥

(९)

योगी में श्रेष्ठ वही है जो कि सबको एक समझता है ।
मित्र साधु वैरी द्वेषी बन्धू पापी में समता है ॥

(१०)

एकान्तवास में रह योगी संग्रह और संग का त्याग करे ।
आश त्याग इन्द्रिय वश कर परमात्मा का ही ध्यान करे ॥

ध्यानयोग की विधि आदि का विस्तृत वर्णन

(११)

शुद्ध भूमि पर आसन रखे कुशका वस्त्र बिछा दे फिर ।
ऊँचा अधिक न नीचा हो उस पर मृग चर्म बिछा के फिर ॥

(१२)

सम्पूर्ण इन्द्रियाँ वश में कर मन को एकाग्र करे योगी ।
निज आत्मा के शुद्धि हित वही योगाभ्यास करे योगी ॥

(१३)

काया गर्दन शिर को रखिये सीधा होकर सुथिर अचल ।
नाक के अग्र भाग को देखे अन्य किसी भी तरफ न टल ॥

(१४)

निर्भय होकर शान्त मना हे ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर ।
आसन पर बैठ रोककर मन मुझमें ही सत्र ध्यानमग्न करे ॥

(१५)

इस विधि से साधन सदा करे आधीन है मन जिस योगी को ।
अद्भुत शान्ति प्राप्त होकर निर्वाण मिले उस योगी को ॥

(१६)

अतिभोजी या भूखे से भी अर्जुन योग नहीं सधता ।
अतिशय सोने जगने से भी साधन योग नहीं सधता ॥

(१७)

आहार विहार सम्यक् करके जो कर्म चेष्टा करता है ।
सम सम्यक् नींद जागरण जिसका योग सिद्ध हो जाता है ॥

(१८)

चित्त नियन्त्रित होकर जब आत्मा में स्थिर होता है ।
कर्मों से निस्पृह व्यक्ति हो वह योग युक्त कहलाता है ॥

(१९)

वायुहीन थल में पडकर जिस तरह दीप है चलित नहीं ।
वैसे ही योगी की उपमा उस तरह चित्त है चलित नहीं ॥

(२०)

योग साधना से अर्जुन जब चित्त निरुद्ध उपरति होता ।
ध्यानयोग से आत्मा का तब दर्शन कर सन्तुष्ट होता ॥

(२१)

तथा बुद्धि औ इन्द्रियों के बाहर अगनित सुख जो है अर्जुन ।
उसका अनुभव करके वह उस तत्त्व से अविचल है अर्जुन ॥

(२२)

जिस लाभ को पाकर और लाभ कुछ शेष नहीं रह जाता है ।
डिगे नहीं उस स्थिति से भीषण दुख यदि आ जाता है ॥

(२३)

हैं कहते इसे योग जानों दुख, संयोग से रहित सदा ।
चित्त लगाकर तत्पर होकर अभ्यास इसी का करो सदा ॥

(२४)

उत्पन्न हुए संकल्पों से वह सभी काम तजना चहिये ।
इन्द्रियों को वश में करके बस योग सदा करना चहिये ॥

(२५)

धैर्ययुक्त मन से मन को धीरे से निज को लीन करे ।
परमात्म सिवा उर में योगी न कुछ भी तनिक विचार करे ॥

(२६)

जहाँ जहाँ चंचल मन अस्थिर परवश भटका रहा करे ।
वहाँ वहाँ से वापस लाकर रोक के स्थिर करा करे ॥

(२७)

रजधर्म नाश जब शान्त प्राप्त पाप रहित हो जाता है ।
ब्रह्मभूत उस योगी को तब परमानन्द मिल जाता है ॥

(२८)

यहि विधि योगाभ्यास करे ताको पाप नशाय ।
बिन श्रम अतिशय सुख मिले ब्रह्म का अनुभव पाय ॥

(२९)

योग युक्त समदर्शी जाने आत्मा सब भूतों में है ।
मैं ही सब प्राणी में हूँ औ सब प्राणी बस मुझमें है ॥

(३०)

जो मुझको सब जगह देखता औ सबको ही देखे मुझमें ।
मैं उससे हूँ अलग नहीं वह सदा ही रहता है मुझमें ॥

(३१)

सबभूत में स्थित मुझको जो समबुद्धि हुआ भजता योगी ।
सब भाँति बर्तता कर्मों को वह मुझमें ही रहता योगी ॥

(३२)

निज आत्मा के तुल्य सभी में दुख सुख देखे सम योगी ।
ऐसे योगी को हे अर्जुन कहते हैं अति उत्तम योगी ॥

मन की चंचलता और उसके निग्रह का साधन

(३३)

अर्जुन उवाच—

समत्व भाव का मधुसूदन जो योग आपने मुझे कहा ।
मन की चंचलता से इसकी थिरता दिखे कठिन महा ॥

(३४)

चंचलमन अधिक वली दृढ़ है निग्रह है वहुत कठिन माधव ।
जिमि हवा की गठरी वँधे नहीं वैसे ही चंचल मन माधव ॥

(३५)

श्रीकृष्ण उवाच—

अर्जुन निश्चय तुम कहते हो चंचल मन निग्रह सहज नहीं ।
वैराग्य और अभ्यासों से पर निग्रह करना कठिन नहीं ॥

(३६)

जिसका मन उसके वशी नहीं मेरा मत कठिन है योग उसे ।
क़िन्तु जितेन्द्रिय योगी जो है योग साधना सुलभ उसे ॥

योगभ्रष्ट पुरुष की विविध गतियाँ और भगवद्चित्त होकर श्रद्धापूर्वक भजन करने वाले योगी की महिमा

(३७)

श्रद्धावाले अयति शिथिल चलित हुआ मन योग से जिनका ।
योग सिद्धि से वंचित केशव क्या गति होगा उनका ॥

(३८)

भटक गया जो योग मार्ग से मेघों सम छिनभिन होकर ।
क्या सभी नष्ट हो जाते हैं दोनों से विचलित होने पर ॥

(३९)

मेरे मन के इस संशय का प्रभु आप निवारण स्वयं करें।
हे कृष्ण आपके सिवा नहीं दूजा जो शंका दूर करे ॥

(४०)

श्री भगवान उवाच—

इह लोक अरु परलोक उसका नष्ट नहिं होता कभी।
शुभ कर्म का कर्ता अहो पाता नहीं दुर्गति कभी ॥

(४१)

पुण्य धर्मी लोक में जाये रहे चिरकाल वहु।
पुनि जन्म ले धनवन्त कुल जो योग भ्रष्ट सुहाल वहु ॥

(४२)

अथवा जन्मता ज्ञानियों के कुल में वह आकर पुनः।
इस लोक में यह जन्म दुर्लभ भ्रष्ट होने पर पुनः ॥

(४३)

पूर्व जन्म की साधना इस जन्म में पाता सहज।
फिर कुन्ति नन्दन यत्न करता श्रेष्ठ सिद्धि को वह सहज ॥

(४४)

पूर्व के अभ्यास उसको योग में तत्पर करें।
योग की जिज्ञास भी शब्द ब्रह्म को पारित करें ॥

(४५)

योगी निरन्तर यत्न से सब पाप से पावन बने।
जन्म जन्ममें सिद्ध होकर परम गति भागी बने ॥

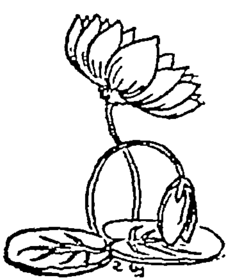
(४६)

अर्जुन सुनो सब तपसियों से श्रेष्ठ होता योगि है,
ज्ञानीजनों से है अधिक भी श्रेष्ठतम वह योगि है ।
कर्मिष्ठ लोगों से अधिक भी श्रेष्ठ होता योगि है,
हे परंतप इसलिऐ तुम भी बनो जो योगि है ॥

(४७)

मुझमें निश्चल राखि मन सब योगिन में जोय ।
श्रद्धा से मुझको भजे योगि श्रेष्ठ वह होय ॥
श्री कृष्णार्जुन सम्वाद के छठे चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' मुझको भजो मन के पाप नशन्त ॥

इति षष्ठम् अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत् इति



श्री राधाकृष्णाय नमः

सातवाँ अध्याय

[ज्ञान-विज्ञान, भगवान की व्यापकता अन्य देवताओं की उपासना एवं भगवान को प्रभाव सहित न जानने वालों की महिमा का कथन]

ज्ञानविज्ञान योग

भगवान के समग्र रूप संबन्धी विज्ञान युक्त ज्ञान का निरूपण

(१)

श्री भगवान उवाच–

मुझमें ही मन पूर्ण लगा मुझमें कर अनुराग।
सन्देह त्याग जेहिं भांति मोहिं जानहिं सुनु उठ जाग॥

(२)

ज्ञान सहित विज्ञान सहित तुझे आज बतलाता हूँ।
जिसे जान अन्जान नहीं होगा सुन वो कहता हूँ॥

(३)

सहस्त्र मानवों में कोई मम यतन प्राप्ति हित ही करता।
यत्नशील सिद्धो में कोई सत्य ज्ञान मेरा करता॥

(४)

धरती जल पावक वायु गगन अहंकार मन बुद्धि में।
मेरी यह प्रकृति बटी हुई केवल इन आठों भागों में॥

(५)

यह तो आठ भेद की अपरा भिन्न है प्रकृति परा इससे ।
जीव रूप अर्जुन यह जानों पूर्ण जगत धारित इससे ॥

(६)

सकल चराचर इन्हीं से जन्में निश्चय है तू उर में धार ।
मैं कारण हूँ अखिल सृष्टि का मैं ही करता हूँ संहार ॥

(७)

मुझसे अलग धनंजय जगमें कोई वस्तु परे नहीं ।
सूत में मणियाँ जैसे गूँथी मुझमें सारी सृष्टि रही ॥

समस्त पदाथ में जीवन तत्व रूप से भगवान की व्यापकता

(८)

अर्जुन जलमें रस मैं हूँ सूर्य चन्द्र प्रकाश मैं हूँ ।
ओंकार वेद में नभ में शब्द औ पुरुषों में पुरुषत्व मैं हूँ ॥

(९)

भूमी में शुभ गन्ध सदा तेज अग्नि में मुझको जान ।
सब जीवों का जीवन हूँ तपसी का तप भी मुझको जान ॥

(१०)

सब जीवों का बीज सनातन जानों पारथ बस मैं ही हूँ ।
बुद्धिमान में बुद्धि हूँ अरु तेजस्वी का तेज मैं हूँ ॥

(११)

काम राग से रहित हुए जो, बलवानों का बल मैं हूँ ।
धर्म विरुद्ध जो काम सभी में उनमें भी अर्जुन मैं हूँ ॥

(१२)

जो भी सात्विक राजस तामस भाव जगत में है पारथ ।
न उनमें मैं, न मुझसे वो, पार हैं जन्में मुझसे पारथ ॥

(१३)

इन्हीं त्रिगुणमय भावों से व्याप्त विश्व यह सारा है ।
पर मोहित मुझको जाने न, मुझ त्रिगुण परे संसारा है ॥

(१४)

मेरी यह शक्ति अलौकिक है त्रिगुणमय यह दुस्तर है ।
जो मेरे शरणागत होते वह इस माया से तरते हैं ॥

(१५)

जिनका ज्ञान ढका माया से भाव आसुरी जिनका है ।
अधम नीच नर मूढ़ वही मम भजन नहीं जो करता है ॥

(१६)

पुण्यवान नर चार जो हैं मुझको भजते हैं अर्जुन ।
आर्त अर्थार्थी जिज्ञासु औ विज्ञानी भजते अर्जुन ॥

(१७)

इनमें ज्ञानी भक्ति करके मुझमें ही चित्त लगाता है ।
उसको मैं प्रिय लगता हूँ मुझको भी वह प्रिय लगता है ॥

(१८)

मेरे मत से उत्तम चारों पर ज्ञानी मेरी आत्मा है ।
उत्तम गति मुझको माने स्थिर हो मुझको भजता है ॥

(१९)

अनेक जन्म के बाद कहीं तत्त्वज्ञ मुझको भजता है ।
सब कुछ वासुदेव मय जाने वह महापुरुष कम होता है ॥

अन्य देवताओं की उपासना

(२०)

अपनी नियत प्रकृति द्वारा नियम अन्य उर धरते हैं ।
विषयासक्त पुरुष अज्ञानी अन्य देवता भजते हैं ॥

(२१)

भक्ति से जो जो जिस जिसकी ईच्छुक बन पूजा करते हैं ।
उस उसकी उसमें ही श्रद्धा हम पूर्ण रूप दृढ़ करते हैं ॥

(२२)

उस श्रद्धा से युक्त भक्त वो करता उसका आराधन ।
उसीसे मन वांछित फल पाता मेरा ही सारा रचा यतन ॥

(२३)

उन मतिमन्द पुरुष के सब फल शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ।
देव भक्त देवों को पाते मम भक्त मुझे ही पाते हैं ॥

भगवान के प्रभाव और स्वरूप को न जानने वाले की निंदा और जानने वाले की महिमा

(२४)

मुझ अव्यय सर्वोत्तम को मूरख नहीं समझते हैं ।
व्यक्ति रूप ही मुझको माने, अतः नाश फल मिलते हैं ॥

(२५)

आवृत योग माया से निज सबको प्रकाश नहीं करता हूँ ।
मूर्ख न जाने मुझको कि मैं अविनाशि अजन्मा हूँ ॥

(२६)

भूत ज्ञात है सब मुझको वर्तमान प्राणी मुझको ।
भविष्य ज्ञात मुझको अर्जुन पर कोई जाने न मुझको ॥

(२७)

इच्छा द्वेष द्वन्द्व मोह से प्राणी इनमें फंसा हुआ ।
जन्म समय से ही अर्जुन अज्ञान मार्ग में पड़ा हुआ ॥

(२८)

जिन पुण्यात्मा पुरुषों का सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।
द्वन्द्व मोह वो तज दृढ़ हो मम भजन सदा ही करते हैं ॥

(२९)

जरा मरण से मोक्ष प्राप्त हित मेरा जो आश्रय जो लेते हैं ।
ब्रह्म कर्म आध्यात्म सभी को मन में सब वे जाने हैं ॥

(३०)

साधिभूत अधिदेव मुझे ही साधि–यज्ञ भी जो जाने ।
युक्त चित्त वो पुरु अन्त में अर्जुन मुझको ही जाने ॥
श्रीकृष्णार्जुन सम्वाद के सातवें चरण का अन्त ।
गीता 'राधाकृष्ण' भने भगवन रूप अनन्त ॥

इति सप्तम् अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत् इति

ॐ

ॐ नरनारायणाय नमः

आठवाँ अध्याय

[ब्रह्म अध्यात्म और कर्मादि के विषय में अर्जुन के सात प्रश्न और उनका उत्तर एवं भक्ति योग तथा शुक्ल और कृष्ण मार्गों का प्रतिपादन]

अक्षय ब्रह्म योग

(१)

अर्जुन उवाच—

कौन ब्रह्म अध्यात्म कौन कर्म किसे कहते केशव ।
क्या है वो अधिभूत कहें अधिदेव कहें किसको केशव ॥

(२)

इसी देह में मधुसूदन अधियज्ञ कौन कैसे माधव ।
अन्त समय में नियत चित्त कैसे तुमको जाने माधव ॥

(३)

श्री भगवान उवाच—

जो परम अक्षर ब्रह्म है अविनाशि है अर्जुन सुनो ।
आत्मजीव स्वभाव को अध्यात्म कुछ कहते हैं सुनो ॥
सब भूत भावों को जने वह त्याग रूप ही यज्ञ है ।
सृष्टि के व्यापार का कारण बने वहि कर्म है ॥

(४)

जो नष्ट जन्में वस्तु वह अधिभूत कहते हैं उसे ।
जो सचेतन पुरुष है अधिदेव कहते हैं उसे ॥

नर श्रेष्ठ हे कहते जिसे अधिपति से जो यज्ञ है ।
वो ही सफल इस देह में कहते मुझे अधियज्ञ है ॥

(५)

सुमिरन मम करता हुआ त्यागे मनुज शरीर ।
पावहिं मेरे रूप को संशय नहीं है वीर ॥

(६)

जिस जिस भावों का सुमिरन नर अन्त समय में करता है ।
उसमें लीन मनुज निश्चय, उस भाव को पाया करता है ॥

(७)

अतः सभी क्षण में अर्जुन मुझे ही मन रख रण तू कर ।
मन बुद्धि मुझमें है यदि तो पायेगा मुझे निश्चय कर ॥

भगवान की महत्ता और भक्ति के द्वारा भगवान की प्राप्ति

(८)

अभ्यास योग से मन वश कर जो परम पुरुष चिंतन करता ।
सदा ध्यान करते करते वह पुरुष उसे निश्चय मिलता ॥

(९)

अनादि है सर्वज्ञ है सबका नियन्ता है वही
वह सूक्ष्म से अति सूक्ष्म है कर्ता वही भर्ता वही ।
भानु सम भासै सदा अचिन्त्य है तम से परे
जो सुमिरता है इसे वह सच्चिदानन्द में परे ॥

(१०)

अन्त में जो अचल मन से भक्ति दृढ करता हुआ।
योग बल से भृकुटि मध्य में प्राण स्थिर जो हुआ।
निश्चलित मन से जो पुरुष स्मरण करता अन्त में।
वह दिव्य रूपी परम को ही प्राप्त होता अन्त में॥

(११)

वेदिक जोहिं अक्षर ॐ कहें वीतराग जहँ जाहिं।
हितकर है जो ब्रह्मचर्य को, कहूँ सूक्ष्म मन लाहि॥

(१२)

सब द्वारों का संयम कर मन को हृदय में रख करके।
प्राण चढ़ा के मस्तक में दृढ़ योग से स्थिर हो करके॥

(१३)

ॐ ये अक्षर ब्रह्म एक उच्चार करे सुमिरे मुझ को।
है देह त्याग जो जाता है तो परम गति मिलती उसको॥

(१४)

जो अनन्य चित्त हो सदा रहे मुझे सुमिरता रहा करे।
उसे सुलभ हूँ मैं पारथ जो लगन लगाये रहा करे॥

(१५)

मुझको पा फिर दुखों का घर, जन्म अनित्य न पाते हैं।
परम सिद्ध को पाय सिद्धजन पुनः न जग में आते हैं॥

(१६)

ब्रह्मलोक पाने वाले नर लौट पुनः जग आते हैं।
मुझे प्राप्ते वाले अर्जुन जग पुनः जनम नहिं पाते हैं॥

(१७)

ब्रह्मा का दिन युग सहस्त्र का होवे सहस्त्र युगों की रात ।
ज्ञाता काल तत्व के पण्डित निश्चय ही यह जाने बात ॥

(१८)

सभी जन्मते दिन आने पर सब अव्यक्त प्रकट होते ।
रात समय उन अव्यक्तों में वे सभी व्यक्त लीन होते ॥

(१९)

सभी भूत गण हे भारत उपज उपज होते हैं लीन ।
दिन आने पर लेता जन्म परवश निशा काल आधीन ॥

(२०)

उस अव्यक्त से न्यारा भी है गूढ सनातन अविनाशी ।
सब भूतों के मिटने पर भी वह कभी नहीं होता नाशी ॥

(२१)

अलख परम गति कहा जिसे उसे अव्यक्त या अक्षर कहते ।
जहाँ गये वापस न आवे मेरा धाम उसे कहते ॥

(२२)

सब प्राणी है जिसके अन्तर, जग सारा जिसमें व्याप है ।
सच्ची भक्ति से पारथ वह परम पुरुष मिल जाता है ॥

शुक्ल और कृष्ण मार्ग का दर्शन

(२३)

जिस काल में योगी देह तजे आते हैं या न आते हैं ।
उसी काल का वर्णन हम अब आगे और सुनाते हैं ॥

(२४)

अग्नि ज्योति दिन शुक्ल पक्ष यह उत्तरायणी छे मासे हैं ।
ब्रह्मज्ञ देह तजते इनमें वह ब्रह्म प्राप्त कर लेते हैं ॥

(२५)

धूम्र रात औ कृष्ण पक्ष जो दक्षिणायनी छे मासे हैं ।
मर कर योगी प्राप्त चन्द्रमा वापस फिर आ जाते हैं ॥

(२६)

शुक्ल कृष्ण यह दो ही गति संसार सदा ही पाते हैं ।
एक से मुक्ति पाते हैं दूसरे से फिर आ जाते हैं ॥

(२७)

दो तत्वों का ज्ञान जिसे वह योगी मोह नहीं पाता ।
अतः धनंजय सभी काल में योग युक्त हो यह भाता ॥

(२८)

तप वेद यज्ञ का पुण्य फल जो प्राप्त होता है कहा ।
उस रहस्य के सब तत्व को योगि जन जाने कहा ॥
इससे अधिकतम श्रेष्ठ ही फल प्राप्त होता है वहाँ ।
उत्तम सनातन ब्रह्म का पद प्राप्त होता है वहाँ ॥

श्री कृष्ण सम्वाद के आठवें चरण का अन्त ।
"राधाकृष्ण" इस योग से पाव धाम ब्रह्मन्त ॥

अष्टम अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत इति

वन्दे कृष्णं जगद्गुरुम्

नवम अध्याय

[ज्ञान, विज्ञान और जगत की उत्पत्ति का आसुरी और देवी सम्पदा वालों का प्रभाव सहीत भगवान के रूप का निष्काम उपासना का एवं भगवद् भक्ति की महीमा का वर्णन]

राजविद्या राजगुह्ययोग

प्रभाव सहित भगवान के परम गुह्य ज्ञान का निरूपण

(१)

श्री भगवान उवाच—

दोषहीन मैं जान तुझे यह गुप्त ज्ञान बतलाता हूँ ।
ज्ञान सहित विज्ञान सहित यह दुखों से मुक्ति सुनाता हूँ ॥

(२)

गुप्त सभी विद्याओं का ये राजा है अति श्रेष्ठ पवित्र ।
प्रत्यक्ष ज्ञान देने वाला अव्यय है साधन योग पवित्र ॥

(३)

जिसकी इस उत्तम पथ पर है श्रद्धा तनिक नहीं अर्जुन ।
वो प्राप्त नहीं होते मुझको संसार चक्र में फिरते पुन ।

(४)

इस अव्य निज रूप से मैंने पूर्ण जगत फैलाया है ।
सकल भूत स्थित मुझमें पर अलग रहूँ जो माया है ॥

(५)

मुझमें स्थित नहीं जीव है देख योग मम प्रभुताई।
लालन पालन करके भी मम आत्मा नहीं भरमाई॥

(६)

जिस तरह सकल बहने वाला ये पवन बली नभ में रहता।
उस तरह जान सब प्राणी भी मुझमें ही टिका हुआ रहता॥

जगत के उत्पत्ति का रहस्य

(७)

हे कौन्तेय कल्पान्त में मेरी प्राकृति में सब सृष्टि समाय।
कल्पारम्भ में पुनः मैं ही यथा पूर्व दूँ सब उपजाय॥

(८)

निज माया का आश्रय ले मैं जीव समूहों को गढता।
बार बार सर्जन करता जो उसमें परवश वश रहता॥

(९)

ये सब कर्म धनंजय मुझको कभी भी बाँध नहीं पाते।
सदा उदासी रहता हूँ मुझमें आसक्ति नहीं आते॥

भगवान को तिरस्कार करने असुर मानवों की निंदा और दैवी प्रकृति वालों के भजन का प्रकार

(१०)

मेरी अध्यक्षता में पारथ जीवों को प्रकृति जनमती है।
इस कारण से ही जग का सम्पूर्ण चक्र फिर चलती है॥

(११)

मेरे रूपको मूढ़ न जाने सब भूतों का ईश्वर हूँ।
अवहेलित करते मुझको कि तनधारी जन ईश्वर हूँ॥

(१२)

वृथा आश ले भ्रष्ट ज्ञान से निष्फल कर्म वे करते हैं।
असुरों सी मोहन प्रकृति ले मूरख जन सदा भटकते हैं॥

(१३)

मैं अव्यय हूँ पार्थ मुझे सब भूत का कारण कहते हैं।
ज्ञानी दैवी मम प्रकृति जान, मम भजन सदा ही करते हैं॥

(१४)

दृढ निश्चयी भक्त जन मेरे गुण नाम सदा कीर्तन करते।
प्राप्त यतन हित मेरे हो अन्य भाव से हैं भजते॥

(१५)

ज्ञानयोग से कुछ हैं जो कि मेरा पूजन करते हैं।
एक मान कोई भेद मान कोई विविध रूप से भजते हैं॥

सर्वात्म रूपसे प्रभाव सहित भगवान के स्वरूपका वर्णन

(१६)

श्रौत कर्म अरु पंच यज्ञादिक सकल जो कर्म हैं,
अन्न पितरों के सभी और वनस्पति जो सर्व है।
घृत मन्त्र अग्नि हवन अरु, ये औषधी जो सर्व है,
'मैं हि हूँ' सब हे धनंजय व्याप्त मुझ में सर्व है॥

(१७)

मातु पितु और जग पितामह त्राण सब कुछ मैं हूँ,
जो ज्ञेय है पावन सभी ओंकार भी तो मैं हि हूँ ।
ऋगवेद एवं साम और यह यर्जुर्वेद भी मैं हि हूँ,
हे कुन्ति नन्दन जगत में जो है वह सब कुछ मैं हूँ ॥

(१८)

मैं ही गति भर्ता प्रभु साक्षी शरण अरु प्रलय हूँ,
आधार हूँ निष्काम हूँ और सृष्टि कारण सवय हूँ ।
सुहुदय हूँ निधान हूँ अव्यय सभी का बीज हूँ,
ये विश्व सारा मैं ही हूँ और जग का मैं ही बीज हूँ ॥

(१९)

मैं ही तपाऊँ सकल अरु वर्षा भी मुझे से होत है,
मैं ही हूँ जल–आकर्षणा कारण जगत का होत है ।
मृत्यु हूँ अमृत भी मैं, इस जग का सब मैं सार हूँ,
मैं हूँ जनक हूँ सत असत का, मैं ही सकल संसार हूँ ॥

सकाम और निष्काम उपासना के विभिन्न फल

(२०)

त्रिवेदज्ञ मेरा भजन करते विविध ढंग से होम कर,
स्वर्ग प्राप्ति चाहते जो सोमरस का भोगकर ।
निज पुण्य बलसे प्राप्त करते लोक इस सुरराज का
देवों के फल को भोगते फल प्राप्त करतें राज का ॥

(२१)

स्वर्ग के वहु भोग भोगति पुण्यक्षय हो जात है,
पुण्य क्षय पर नर पुनः यह लोक में फिर आत है।
इस तरह वेदोक्त जो याज्ञादि कर्म जा सकल है,
कामना से पूर्ण है आवागमन का फन्द है॥

(२२)

अनन्य मन जो मोर है नित्य करत ही ध्यान।
योगक्षेम तिनका करूं सतत संयमी जान॥

(२३)

अन्य लोग भी श्रद्धा से जो अन्य देवता को पूजें।
वे भी अविधि ढंग से दृढ़ हो अर्जुन मुझको ही पूजें॥

(२४)

मैं भोक्ता सब यज्ञों का मैं ही तो स्वामी सबका हूँ।
वे पूनर्जन्म को पाते हैं जो नहीं जानते मैं क्या हूँ॥

सर्वार्पणरूपा निष्काम शक्ति की महिमा

(२५)

देवों को देव भक्त पाते पितरों को पितृ भक्त पाते।
भूत भक्त को भूत मिले पर मेरे भक्त मुझे पाते॥

(२६)

पत्र पुष्प जलफल जो भी मम भक्त मुझे अर्पन करता।
भक्ति सहित उस दिये अर्ध को प्रेम से मैं धारन करता॥

(२७)

जो कुछ करते हो पारथ खाते हो या कुछ दान करो ।
यज्ञ करो या तप सब कुछ मुझको ही अर्पण सभी करो ॥

(२८)

अच्छे बुरें कर्म बंधन से मुक्ति तुम पा जावोगे ।
संन्यास योग से युक्त मुक्ति ही पारथ तुम पा जावोगे ॥

(२९)

मैं समदर्शी सब जीवों में कोई न मित्र शत्रु मेरा ।
जो भक्ती से भजते मुझको, मैं उनमें हूँ वो है मेरा ॥

(३०)

कोई दुराचारी है यदि लेकिन मम भजन नित्य अनन्य करे ।
उनको भी साधू जानों, जोकि निश्चय को भी यथार्थ करे ॥

(३१)

वन धर्मात्मा इस जगमें शाश्वत शान्ति प्राप्त करता ।
हे अर्जुन विश्वास करों कि मेरा भक्त नहीं मिटता ॥

(३२)

मम शरण आगत होके अर्जुन अधम भी तर जात है,
स्त्रियाँ हो शूद्र हों या वैश्य की वो जात है ।
गहकर मेरा ही आसरा मम भजन निशदिन करत है,
अति श्रेष्ठ गति को प्राप्त हो मम धाम में वह परत है ॥

(३३)

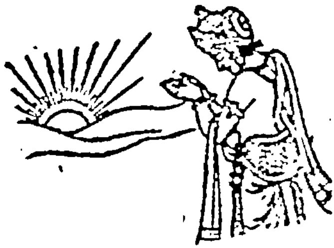
फिर क्या कहो उन विप्र को जो पुण्य शीली पुरुष हैं,
जो भक्त हैं राजर्षि हैं मोक्ष पाते पुरुष हैं ।

इस नित्य हीनी जगत में सुख नहीं है ध्यान कर,
प्राप्त हो इस लोक में पारथ अतः मम भजन कर ॥

(३४)

पारथ अतः निज मन लगाके मुझमें ही तू ध्यान कर,
मुझको भजो पूजो भी मुझको और मुझे परनाम कर।
मम भक्त बन हे पांडु नन्दन मुझमें तत्पर यदि रहोगे,
मेरे परायण होके निश्चय मुझको ही तुम पावोगे ॥
श्री कृष्णार्जुन सम्वाद के नवम चरण का अन्त।
'राधाकृष्ण' नित भजन कर पाव धाम भगवन्त ॥

इति नवम् अध्याय समाप्तः
ॐ तत् सत् इति



श्री कृष्णः शरणं मम

दशम अध्याय

[भगवान की विभूति योगशक्ति तथा प्रभाव सहित भक्तियोग का कथन अर्जुन के पूछने पर भगवान के द्वारा अपनी विभूतियों का और योग शक्ति का पुनः वर्णन]

विभूतियोग

भगवान की विभूति और योगशक्ति तथा उनके जानने का फल

(१)

श्री भगवान उवाच –

फिर भी सुनो महाबाहु मैं परम गूढ सुनता हूँ।
तुम प्रिय के हित इच्छा से तुमको मैं पुनि बतलाता हूँ॥

(२)

नहीं जानते देव ऋषि मेरा उत्पत्ति कहाँ से है।
देवों का ऋषिजन सबका ही क्योंकि उत्पत्ति मुझी से है॥

(३)

अज अनादि जगदीश्वर इस रूप से जाने जो मुझको।
वो नर ज्ञानी श्रेष्ठ पूर्ण हो पाप मुक्त पाता मुझको॥

(४)

बुद्धि ज्ञान अस्मोह क्षमा सत्य और दम शम सारे।
सुखदुख और उत्पत्ति प्रलय भी भय और अभय सारे॥

(५)

दान, अहिंसा, तप, समता, सन्तोष, अपिकीर्ति सभी ।
मुझसे ही ये भाव प्राणी के होते हैं उत्पन्न सभी ॥

(६)

मेरे मन के भाव हुए मनु साता ऋषि पहले के चार ।
हे अर्जुन जिससे होता है इस जग में फिर जन विस्तार ॥

(७)

मेरी विभूति को तत्व सहित और योग को जो नर जाना है ।
इसमें शंका तनिक नहीं वह ध्यान योग को पाता है ॥

फल और प्रभाव सहित भक्ति योग

(८)

सबके उत्पत्ति का कारण मैं, जग मुझसे चेष्टा करता है ।
यही जानकर ज्ञानी जन प्रेम से मुझको भजता है ॥

(९)

हो मत्तचित्त और सद्‌गत वे, आपस में ही कथन करें ।
नित्य कथन करके मेरा वे मग्न तुष्ट नित रहा करें ॥

(१०)

प्रीति सहित औ सतत युक्त भजने वाले ज्ञानीजन को ।
देता हूँ मैं बुद्धियोग जिससे वे पाते हैं मुझको ॥

(११)

ज्ञान रूप दीपक के द्वारा उन पर कृपादृष्टि के लिए ।
अज्ञान तिमिर सब नष्ट करूं उनमें वास करके उनके लिए ॥

अर्जुन के द्वारा श्री कृष्ण की महत्ता ज्ञापन पूर्वक स्तुति और विभूति तथा योगेश्वर्य वर्णन के लिए प्रार्थना

(१२)

परम ब्रह्म हैं परम धाम पवित्र आप भगवान परम ।
शास्वत पुरुष दिव्य अज ईश्वर देवताओं के आप परम ॥

(१३)

आप स्वयं और अन्य ऋषि देवता और नारद कहते हैं ।
आसित व्यास देवल ऋषिजन ईस आपको कहते हैं ॥

(१४)

हे केशव जो कहते हो वह सत्य हृदय से माना है ।
देवता दानव कोई भी न रूप आपका जाना है ॥

(१५)

हे भूतेश्वर जगत्पति भूतेश जीव के ईश्वर है ।
आप स्वयं को स्वयं जानते भूत पिता देवेश्वर है ॥

(१६)

निज विभूति का वर्णन भी सब आप स्वयं कर सकते हैं ।
निज विभूति के द्वारा ही जग व्याप्त सदा ही रहते हैं ॥

(१७)

हे योगेस्वर कृष्ण आपको चिंतन कर कैसे जानूं ।
किन किन भावों से भगवन चिंतन करना अच्छा मानूं ॥

(१८)

निज विभूति और योग जनार्दन विस्तृत में वर्णन करिये ।
सुधा तुल्य वचनों को सुनकर तृप्त नहीं हूँ पुनि कहिये ॥

श्री कृष्ण के द्वारा अपनी विविध विभूतियों का और योगशक्ति का वर्णन

(१९)

श्री भगवान उवाच–

अब अपनी सब ये दिव्य विभूति तुझको मैं बतलाऊँगा ।
मेरा विस्तार अनन्त सखे तो मुख्य ही मुख्य सुनाऊँगा ॥

(२०)

सब जीवों के उरमें बसता गुडकेश मैं आत्मा हूँ ।
आदि मध्य सब जीवों का मैं अन्त भी करने वाला हूँ ॥

(२१)

बारह आदित्य में विष्णु हूँ ज्योति में अर्जुन दिनकर हूँ ।
मारीच हूँ वायु में भी मैं औ नक्षत्रगणों में शशिकर हूँ ॥

(२२)

वेदों में हूँ सामवेद देवों में मैं ही इन्द्र भी हूँ ।
मन मैं सभी इन्द्रियों में जीवों की चेतन शक्ति हूँ ॥

(२३)

रुद्रों में शंकर हूँ पारथ, असुर यक्ष में धनपति हूँ ।
वसुओं में पावक मैं ही और पर्वतों में मेरु पति मैं हूँ ॥

(२४)

सभी पुरोहितों में प्रधान हस्पति बृहस्पति मुझको जानो तुम ।
सेनापतियों में स्कन्द मुझे सरों में सागर जानो तुम ॥

(२५)

महर्षियों में भृगु मैं ही वचनों में एकाक्षर ॐ भी हूँ ।
यज्ञों से जपयज्ञ मैं ही स्थावर में हिमालय भी हूँ ॥

(२६)

सभी वृक्षों में पीपल मैं देवर्षि गणों में नारद हूँ ।
चित्ररथ गन्धर्वों में औ सिंहों में भी कपिल मैं हूँ ॥

(२७)

उत्पन्न हुआ अमृत कण से उन अश्वों में उच्चैश्रव हूँ ।
हस्तिदलों में ऐरावत औ मानव में राजा मैं हूँ ॥

(२८)

वज्र हूँ शास्त्रों में अर्जुन औ कामधेनु हूँ गायों में ।
प्रजा जनक में कामदेव अरु वासुकि हूँ मैं सर्पों में ॥

(२९)

सब नागों में शेषनाग और जलचरमें मैं वरुण भी हूँ ।
अर्यमा पितरों में मैं औ शासक में यमराज भी हूँ ॥

(३०)

दानवों में मैं प्रहलाद भी हूँ गिनने वालो में काल भी मैं ।
सिंह सभी पशुओं में हूँ औ चिड़ियों में हूँ गरुण भी मैं ॥

(३१)

वेगवान में पवन भी मैं शस्त्रधारी में राम भी हूँ ।
मत्स्य पुंज में मगरमच्छ सब नदियों में गंगा भी हूँ ॥

(३२)

आदि मध्य औ अन्त सृष्टि का हे अर्जुन मुझको जानों ।
विद्या में हूँ अध्यात्म तथा वादों में सिद्धान्त मुझे जानों ॥

(३३)
अक्षर दल में अकार भी मैं द्वन्द समासों में मैं हूँ ।
महाकाल हूँ कालों का सब का धाता विराट मैं हूँ ॥

(३४)
सबका संहारक मृत्यु मैं पैदा करता अर्जुन मैं हूँ ।
कीर्ति वाक श्री नारी में क्षमा स्तुति मेधा धृत हूँ ॥

(३५)
साम मन्त्र में वृहद् साम हूँ छन्दों में गायत्री मैं ।
मार्गशीर्ष हूँ मासों में और वसन्त ऋतु ऋतुओं में मैं ॥

(३६)
छल विद्या में जुआ भी मैं तेजस्वी में तेज मैं हूँ ।
जीतों में जय औ बलों में बल उद्योगी का उद्योग मैं हूँ ॥

(३७)
वृष्णिवंश में वासुदेव पांडवों में अर्जुन भी मैं हूँ ।
मुनीजनों में व्यासदेव कवियों में शुक्राचार्य मैं हूँ ॥

(३८)
दण्ड दमन कर्ता का मैं विजयी जनों की नीति मैं हूँ ।
गुप्त भाव में मौन भी मैं ज्ञानवान का ज्ञान मैं हूँ ॥

(३९)
उत्पन्न कर्ता सब जीवों का मूल बीज तो मैं ही हूँ ।
अलग नहीं जग में कोई सब में पार्थ मैं ही हूँ ॥

(४०)
मेरी इस दिव्य विभूति वृहद का नहीं परंतप अन्त कहीं ।
अतः इन्हीं के बारे में मैंने संक्षेप में यहाँ कही ॥

(४१)

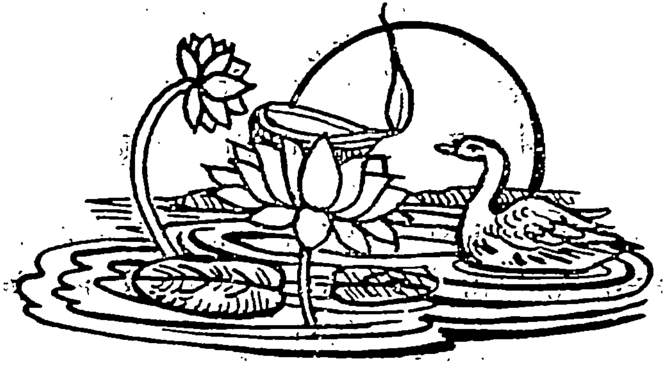
यदि विभूतिमय कान्तिमान कुछ शक्ति युक्त जंग में जानों।
उसको भी मेरे तेज अंश से उत्पन्न हुआ पारथ मानों ।।

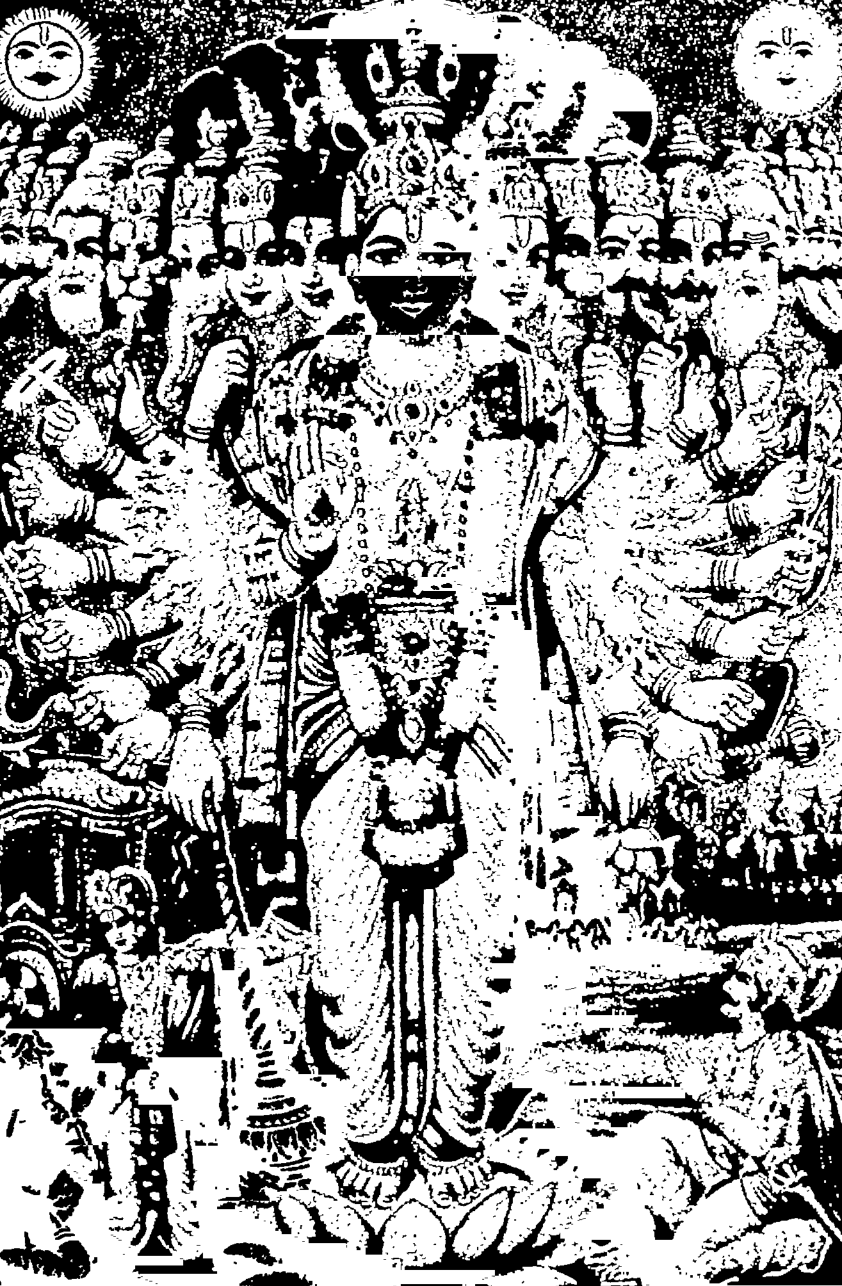
(४२)

अधिक ज्ञान से हे पारथ उर कौन प्रयोजन है करता ।
अपने एक अंश से मैं संपूर्ण विश्व धारण करता ।।

श्री कृष्णार्जुन संवाद के दशम चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' प्रभु शरण मह एक चित्त हृदयन्त ।।

इति श्री दशम अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत् इति





KHANNA & Co.,
Devaraja Mudali St.,

Virat Swaroop -1-

64

श्री विष्णुवे नमः

एकादश अध्याय

[विश्वरूप का दर्शन कराने के लिये अर्जुन की प्रार्थना भगवान और संजय द्वारा विश्वरूप का वर्णन, अर्जुन के द्वारा भगवान के विश्वरूप का दर्शन, भयभीत अर्जुन द्वारा के भगवान की स्तुति प्रार्थना, भगवान के द्वारा विश्वरूप और चतुर्भुज रूप के दर्शन की महीमा और अन्य भक्ति से ही भगवान के प्राप्ति का कथन]

विश्वरूप दर्शनयोग

विश्वरूप का दर्शन कराने के लिए अर्जुन की प्रार्थना

(१)

अर्जुन उवाच –

मेरी हित इच्छा से भगवान अध्यात्म ज्ञान गुप्त मुझे कहा ।।
मोह मिटा उससे केशव जो ज्ञान आपने मुझे कहा ।।

(२)

उत्पत्ति प्रलय जीवों का सब मैंने प्रभु मुख से सुना सभी ।
हे कमल नेत्र अविनाशी रूप महात्म्य आपका सुना सभी ।।

(३)

जो कुछ प्रभु ने कहा स्वयं को सब कुछ सत्य मानता हूँ ।
देखूं ईश्वर रूप प्रभो किन्तु नहीं चाहता हूँ ।।

(४)

उस रूप को देख सकूंगा मैं यदि उचित मानते आप मुझे ।
फिर तो योगेश्वर दर्शादें अपना अज अव्यय रूप मुझे ।।

भगवान के द्वारा विश्वरूप का वर्णन

(५)

श्री भगवान उवाच –

हे पारथ देखो मेरे सैकडों हजारों रूप अभी ।
वर्ण अलौकिक भिन्न भिन्न औ दिव्य रूप को देख अभी ॥

(६)

आदित्य रुद्र वसु मरुत तथा कुमार अश्विनी को देखो ।
जो कभी नहीं देखा पारथ वे अनेक अचरज को देखो ॥

(७)

मेरे इस देह में एक जगह संपूर्ण चराचर जग को देख ।
और देखना जो चाहों वो भी इसमें पारथ तू देख ॥

(८)

अपनी इन आँखों से किन्तु देख नहीं तुम पावोगे ।
देता हूँ मैं दिव्य दृष्टि जिससे ऐश्वर्य को देखोगे ॥

धृतराष्ट्र के प्रति संजय के द्वारा विश्वरूप वर्णन

(९)

संजय उवाच –

हे धृतराष्ट्र ऐसा कहकर श्री योगेश्वर ने फिर अपना ।
परम भक्त अर्जुन को फिर दर्शाया परम रूप अपना ॥

(१०)

कितने मुख कितनी आँखे हुए अद्‌भूत दर्शन दिव्य वहुत ।
दिव्य दिव्य भूषण कितने हाथों में लैस हैं शस्त्र वहुत ॥

(११)

दिव्य वस्त्र मालायें पहिने, दिव्य गन्ध से लिप्त स्वरूप ।
आश्चर्य युक्त विराट रूप में, अर्जुन देखे बहुत स्वरूप ॥

(१२)

एक सहस्र दिनकर नभ में यदि एक साथ उदित होवें ।
तो प्रकाश जितना हो शायद उस प्रकार सा ही होवे ॥

(१३)

प्रभुवर के उस दिव्य देह में सारा जग नाना बंटा हुआ ।
देखा एकस्थ उसी तन में बंटा है पर एकत्र हुआ ॥

(१४)

आश्चर्य चकित होकर अर्जुन हर्षित रोमांच हुआ बोला ।
विश्व रूप परमात्मा को सिर से प्रणाम करके बोला ॥

अर्जुनके द्वारा विश्वरूपके दर्शन और विश्वरूप स्तवन

(१५)

अर्जुन उवाच—

हे देवतन में आपके सब प्राणियों को देखता,
आसन कमल आसीन हैं ब्रह्मा को भी मैं देखता ।
शंकर तथा सब ऋषिजनों को भी सकल मैं देखता
दिव्य सर्पों को सभी हे नाथ इसमें देखता ॥

(१६)

बाहु अनेकों उदर मुख अरु नेत्र बहुतन देखता,
अनन्त रूपी आपको चहुं ओर हूँ मैं देखता ।
न आदि है न मध्य है न अन्त ही को देखता,
हे विश्वेश्वर आपके अनगिनत रूप को देखता ॥

(१७)

मुकुट गदा और चक्रधर फैले प्रभा को देखता,
तेज पुंज अरु सूर्य अग्नि सम प्रकाशित देखता।
देखना जो है कठिन दृग से वो भी मैं देखता,
और अपरमपार जो वह रूप भी मैं देखता ॥

(१८)

अक्षर परम परमात्मा अरु ज्ञेय ही तो आप हैं,
जगत आश्रय अरु अनादि धर्म रक्षक आप हैं।
हो सनातन पुरुष अरु अविनाशि पुरुष भी आप हैं,
मत से मेरे तो हे प्रभो सृजक पालक आप हैं ॥

(१९)

आदि मध्य से रहित औ सामर्थ-युक्त अनन्त हो,
अनेक भुज वाले प्रभो रविचन्द्र यम दृगन्त हो।
अग्नि रूपी मुख से सब हैं प्रज्ज्वलित यह जगत-सब,
निज तेज से तपता हुआ देखूं तुम्हीं में जगत सब ॥

(२०)

स्वर्ग पृथ्वी मध्य का यह गगन व्याप्त तुममें प्रभो,
सब दिशाएँ भी तुम्हीं में व्याप्त सारे हैं प्रभो।
अति उग्र अद्भूत रूप को जो देखते हैं हे प्रभो,
त्रैलोक्य भय व्यथित है उस दिव्य रूप से हे प्रभो ॥

(२१)

हे गोविन्द सब देवगण तो आप में ही समा रहे,
कोई भीत हो निज हाथ जोड़े नाम कितन करे रहे।

कल्याण हो ऋषिजन कहें अरु सिद्धजन भी कह रहे,
श्रेष्ठ स्त्रोतों के सहित कोई स्तुति भी कर रहे ।

(२२)

रुद्र औ आदित्य वसु अरु साध्य गण विश्वेदेव सब,
अश्वनी दोनों कुमारें मरुद्र व पितरें मिलके सब ।
गंधर्व यक्ष और असुर सब झुंड झुंड में मिलके सब,
प्रभु आपको हैं देखते विस्मित हुए वो सबके सब ॥

(२३)

आपके ये बहुत मुख और नेत्र वाले रूप को,
बहुं हाथ औ जंघा तथा बहु उदर वाले रूप को ।
विकराल दाडी रूप को लख लोक व्याकुल हो रहा,
हे महाबाहो प्रभो मैं भी तो व्याकुल हो रहा ॥

(२४)

नभ से छुवा देदीप्त रंग में फैले हैं जबड़े प्रभो,
प्रज्वलित हैं नेत्र सारे हैं प्रकाशित हे प्रभो ।
इस रूप को प्रभु देखकर कंपित हुआ अन्तर प्रभो;
धीरज सकल जाती रही अरु शांति भी नहिं प्रभो ॥

(२५)

प्रलयंकारी विकराल प्रभुवर अग्नि सम मुख देखकर,
सब दिशायें भूलती समधान नहीं वो देखकर ।
हे देवताओं के परम हे जग के धर्ता हे प्रभो,
हे दीनबन्धु, होइये, प्रसन्न देवा हे प्रभो ॥

(२६)

आपके मुख में प्रभो धृतराष्ट्र के ये पुत्र सब,
नृप अनेकों का भी दल भीष्म कर्ण अरु द्रोण सब ।
मेरी तरफ के वीर भी जो आ खड़े हैं रण में सब,
देखता हूँ मैं सभी प्रवेश करते मुख में सब ॥

(२७)

अति भयानक मुख में प्रभु के दांत में दबते हैं सब,
कितने तो चूरण हो गये उस दांत में दबपिस के सब, ।
कितने तो शिर बे शिर हुए हैं औ दबे हैं लोग सब,
आपके विकराल कर उलझे हुए हैं सब के सब ॥

(२८)

धारा नदी की जिस तरह सिन्धु ढिग जाती सभी,
उस तरह ये वीर सब औ नर जो दिखते हैं सभी ।
आपके जलते हुए मुख में समाते हैं सभी,
व्याकुल हुए उलझे हुए प्रवेश करते हैं सभी ॥

(२९)

जैसे महा विकराल अग्नि ज्वलित होकर जल रहे,
अरु पतंगे नाश होने के लिए हैं आ रहे ।
वैसे सकल ये लोक सारे वेग से हैं आ रहे,
आपके मुख नाश हित प्रवेश करते आ रहे ॥

(३०)

जलते हुए मुख से प्रभो इस लोक को ग्रस कर रहे,
हर तरफ से लोक को तुम चाट करके खा रहे ।

हे विष्णु अपने रूप से पूरा उजाला कर रहे,
निज भयंकर तेज से जग को तपाया कर रहे ॥

(३१)

इस उग्र रूप में कौन हो प्रभु विनत हूँ भगवन कहो,
मैं करुं प्रणाम अरु वंदन करुं भगवन अहो।
मैं चाहता हूँ जानना मुझ पर प्रसन्न होकर कहो,
आपसे अनभिज्ञ हुँ जो तत्त्व जो है मुझ ने कहो ॥

श्रीकृष्ण के द्वारा लोक संहारकारी अपने कालरूपका वर्णन और अर्जुन को युद्धके लिए उत्साह प्रदान

(३२)

श्री भगवान उवाच–
मैं काल हूँ कालों का सब एवं विनाशक सबका हूँ,
इस समय आया यहाँ ये नाश करने सबका हूँ।
ये सैन्यदल जो हैं खड़े करने को है युद्ध के सब
यदि नहीं मारेगा तू फिर भी मरेंगे सब के सब ॥

(३३)

इसलिए हे कुन्तीनन्दन उठो महायश प्राप्त कर,
जीतो धराको बाहु से औ राज सुख का भोग कर।
पूर्व में ये सबके सब मेरे ही द्वारा मृत हैं
सव्यसाची हे भरत तु तो सिर्फ एक निमित्त है ॥

(३४)

द्रोण भीष्म कर्ण औ जयद्रथ औ ये वीर सब,
मेरे ही द्वारा मर गये हैं पूर्व में ये शूर सब।

इन मरे पुरुषों को मारो रण में तुम निर्भय रहो,
उर में तू विश्वास कर जीतेगा तू रण में अहो ॥

(३५)

संजय उवाच–

वचन सुने भगवान के अर्जुन कंपित गात ।
भय सहित प्रमाण कर हर्षित बोल्यो बात ॥

भयभीत अर्जुन के द्वारा भगवान की स्तुति, और चतुर्भुज रूप प्रकट करने के लिए प्रार्थना

(३६)

अर्जुन उवाच–

आपके ही नाम जप से जगत हर्षित होत है,
आप में अनुराग कर वह मुदित मन से होत है ।
दानव सभी भयभीत हों चहुं ओर मारे फिरत हैं
योग्य माने सिद्धजन प्रणाम प्रभु को करत है ॥

(३७)

हे महात्मन् आप ही ब्रह्मा के कर्ता आदि हो,
हे जगत ईश्वर आप ही तो देवगण के देव हो ।
क्यों न नमें तुमको, प्रभो सत असत कारण आप हैं,
अविनाशि हो अक्षर तुम्हीं अरु श्रेष्ठ सबसे आप हैं ॥

(३८)

तुम आदि हो और हे प्रभो तुम ही सनातन पुरुष हो,
तुम ही जगत के आसरा तुम ही परम मम पुरुष हो ।
तुम वेत्ता हो सर्व के और योग्य आराधन पूर्ण हो ।
यह जगत व्याप्ति आप में है प्रभु अनन्तम रूप हो ॥

(३९)

तुम वायु हो अग्नि तुम्हीं यम शशि वरुण भी तुम ही हो,
तुम हो प्रजापति और भी उनके पिता भी तुम ही हो।
करता सहस मैं नमन हूँ तुमको प्रभु प्रणाम है,
नमो नमामि नमः नमः प्रभु बार बार प्रणाम है॥

(४०)

हे सर्व ईश्वर आपको चहुंमुख नमन है आपको,
सन्मुख से भी पीछे से भी प्रणाम है प्रभु आपका।
तुम शक्तिशाली अजय हो अरु सर्व व्यापी हो प्रभु,
तुम पराक्रम अनन्तवीर्यो सबके ईश्वर हो प्रभु॥

(४१)

जानकर तुमको सखा मैं धृष्टता से कुछ कहा,
यादव कहा अरु कृष्ण भी सखा मैंने कहा।
अन्जान था महिमा से प्रभु की स्नेहवश से है कहा—
अज्ञानता के वश में हो त्रुटि से सभी मैंने कहा॥

(४२)

अपमान जो प्रहसन में मैंने यदि किया हो हे प्रभो,
खानेमें सोने बैठने अथवा हँसी में है प्रभो।
एकान्त में या खेल में सन्मुख सभी के है प्रभो,
मैं क्षमायाची हूँ सबका तुम अप्रमेय है प्रभो॥

(४३)

तुम हो पालनहार प्रभुवर इस चराचर जगत के
आप ही हो पूज्य और गुरु श्रेष्ठ भी इस जगत के।

आपसे उत्तम जगत में है कोई पूजा नहीं,
आपसे भी श्रेष्ठ इस त्रिलोक में दूजा है नहीं ॥
(४४)
दण्डवत साष्टांग करके अर्चना भी मैं करुं,
आपको प्रसन्न करने के लिए स्तुति करुं।
निज पुत्र को जैसे पिता, मित्र को, पत्नी को पति,
तिमि सहन करके क्षमा कर दो हूँ प्रभु विनम्र अति ॥
(४५)
जो नहीं देखा था पहले रूप अद्भूत को प्रभो,
आज देखा हूँ वही हर्षित मना होकर प्रभो
अब मैं व्याकुल हूँ प्रभो वो प्रथम रूप दिखाइये,
हे देव ईश्वर हे जगत्पति मुझपर प्रसन्न अब होइये ॥
(४६)
हे प्रभो मैं चाहता हूँ देखना उस रूप को,
शीश पर छवि मुकुट हो कर में गदा उस रूपको ।
चक्र को कर में प्रभो के उस चतुर्भुज रूपको,
हे विश्वमूर्ति सहस बाहु धारिये उस रूपको ॥

भगवान के द्वारा अपने स्वरूप दर्शन की महिमा का कथन और चतुर्भुज सौम्य रूप का दर्शन कराना

(४७)
श्री भगवान उवाच–
होकर प्रसन्न तुमको दिखाया निज परम उस रूपको,
योग बल से तेजमय सीमित नहीं उस महत को ।

जो कठिन अत्यन्त है और अदृश्य है अन्य को,
जो नहीं देखा कोई तुमको दिखाया रूप को ॥

(४८)

हे पाण्डुनन्दन रूप यह इस लोक में दुर्लभ है अति,
न वेद अध्ययन से तथा तप और कोई दान अति ।
कोई क्रिया से भी नहीं कोई मुझे देखे जगत,
तेरे सिवा सम्भव नहीं कि रूप देखे कोई जगत ॥

(४९)

मेरे भयंकर रूप दर्शन कर व्यथित होवो नहीं,
भय मान कर भी हे धनंजय मूढता प्रकटो नहीं ।
हे प्रीतिवाला पुरुष पुनि उस रूप का दर्शन करो,
मेरे चतुर्भुज रूपका अर्जुन पुनः दर्शन करो ॥

(५०)

संजय उवाच–
ऐसो कहि अर्जुन को नृप, पूर्व रूप दिखाया ।
सौम्य रूप से अभय करि धीरज दियो बंधाय ॥

(५१)

अर्जुन उवाच –
विलख तुम्हारा सौम्य रूप इस मानव तन में हे माधव ।
अब मैं निर्भय शान्त हुआ औ ठिकाने मन माधव ॥

अनन्य भक्ति से ही भगवान के दर्शन, ज्ञान तथा उनमें प्रवेश की योग्यता का अनन्य भक्ति के स्वरूप का वर्णन

(५२)

श्री भगवान उवाच –

जिस रूप को तुमने देखा है वह रूप वहुत दुर्भल अर्जुन ।
देवता भी इच्छा करते नित उस रूप के दर्शन को अर्जुन ।।

(५३)

तप दान वेद और यज्ञों से यह रूप देख नहीं सकता है ।
जिस रूप को दर्शाया तुमको वह सदा ही दुर्लभ रहा है ।।

(५४)

पर मेरे विश्वरूप को अर्जुन अटल भक्ति से देख सके ।
अनन्य मन से लीन मुझी में भलीभाँति मोहिं जान सके ।।

(५५)

मम प्राप्ति हित जो कर्म सब लौकिक करे वैदिक करे,
भक्ति सहित निःसक्त हो औ मित्रता सबसे करे ।
मेरे परायण होके वह सब कर्म को नित करत है,
अनन्य शक्ति मन पुरुष मुझको सहज ही प्राप्त है ।।
श्री कृष्णार्जुन सम्वाद के एकादश चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण प्रभु शरण गह विश्वरूप दर्शन्त ।।

एकादश अध्याय समाप्त

ॐ तत्सत् इति

श्री सीतारामाय नमः

द्वादश अध्याय

[साकार तथा निराकार के उपासकों की उत्तमता का निर्णय तथा भगवत प्राप्ति के उपाय का वर्णन एवं भगवत् प्राप्त भगवान के प्रिय भक्तों के लक्षण]

भक्ति योग

(१)

अर्जुन उवाच—

जो भक्त निरन्तर सगुण रूप से भक्ति आपकी करते हैं।
अथवा निर्गुण ब्रह्म उपासक किसे श्रेष्ठ प्रभु कहते हैं॥

दिव्य मंगल विग्रह भगवान और अव्यक्त अक्षर के उपासकों की श्रेष्ठता का निर्णय

(२)

श्री भगवान उवाच—

जो मन में मुझको नित लगा, श्रद्धा से पूजा करते हैं।
मेरे मत से श्रेष्ठ वहीं, भक्ति से नित जो भजते हैं॥

(३)

जो अक्षर अव्यक्त अगोचर, ब्रह्म की पूजा करते हैं।
अचिंत्य औ सर्वत्र हैं जो, कूटस्थ अचल में रमते हैं॥

(४)

ऐसे जो इन्द्री वश में कर सम भाव सभी में रखते हैं।
सर्वजनों के हित में रत वे मुझको ही पा लेते हैं॥

(५)

जो अव्यक्त सक्त हैं उनको, क्लेश अधिक होता अर्जुन ।
तन धारी को कठिनाई से, अव्यक्त सिद्ध होता अर्जुन ॥

(६)

पर सगुण उपासक भक्त मुझी में, कर्म सभी अर्पण करता ।
अनन्य योग से ध्यान मुझीमें व्यापक रूप से है होता ॥

(७)

ऐसे प्रेमी अटल भक्त जो मुझमें चित्त लगाते हैं ।
मृत्यु रूप संसार से सिन्धु से झटसे हम पार लगाते हैं ॥

भगवद् प्राप्ति का उपाय

(८)

मुझमें मनको लगा पार्थ यदि मुझ में बुद्धि लगायेगा ।
इसमें संशय तनिक नहीं मुझमें ही प्राप्त तू होयेगा ॥

(९)

यदि तू समर्थ नहीं होता मुझमें मन स्थिर करने को ।
मुझको पाने की करो चाह अभ्यास योग से पाने को ॥

(१०)

अभ्यास योग कर सको नहीं तो मेरे हित सब कर्म करो ।
करता हुआ कर्म मम हित मेरी ही प्राप्ति सहज करो ॥

(११)

अर्जुन इसको करने में यदि, समर्थ नहीं तू होता है ।
कर्म फलों को त्यागों मुझमें मन तेरे उपजित होता है ॥

(१२)

अभ्यासों से ज्ञान श्रेष्ठ ध्यान ज्ञान से उत्तम है ।
ध्यान से उत्तम फल का त्याग शान्ति सदा ही उत्तम है ॥

भगवान के प्रिय भक्तों का लक्षण

(१३)

सब जीवों से द्वेष करे न दया भाव सब पर रखे ।
ममता तज हो गर्व रहित सुख दुख में एक क्षमा रखे ॥

(१४)

ध्यान योग से युक्त जो योगी दृढ़ निश्चयी संतुष्ट हुआ ।
सब कुछ अर्पण करे भक्त, प्यारा वह मुझको बहुत हुआ ॥

(१५)

जग सार जिससे व्यथित न हो, और व्यथित न जग से वह ।
हर्ष क्रोध भय त्रास मुक्त जो, मुझको प्रिय अतिशय है वह ॥

(१६)

चाह हीन शुचि चतुर उदासी, कोई व्यथा नहीं जिसको ।
सब आरंभों का त्यागी वह सबसे प्रिय पारथ मुझको ॥

(१७)

हर्ष करे न द्वेष करे औ, शोक अकांक्षा नहीं करता ।
पाप पुन्य फल का त्यागी, वह भक्त मुझे अति प्रिय लगता ॥

(१८)

अपमान मानमें सदा सुखी, औ शत्रु मित्र में समता हो ।
शीत उष्ण सुख दुख सम हो, मुझको प्रिय संग न रखता हो ॥

(१९)

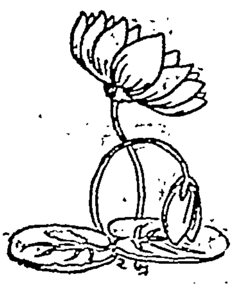
निंदा स्तुति सम, मौन रहे गृहहीन सदा सन्तुष्ट रहे ।
वह भक्त सदा है प्रिय मुझको जिसकी बुद्धि स्थिर भी रहे ॥

(२०)

उक्त धर्म अमृत समझे, निष्काम मना सेवा करते ।
श्रद्धालु परायण मेरे भक्त, अतिशय हैं प्रिय मुझको लगते ॥

श्री कृष्णार्जुन सम्वाद के, द्वादश चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' प्रभु भक्ति से, पाव दरश भगवन्त ॥

इति द्वादश अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत् इति



श्री कृष्णाय नमः

तेरहवाँ अध्याय

[ज्ञान सहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ और प्रकृति पुरुष का वर्णन

अर्जुन उवाच-

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग

प्रकृति, पुरुष अरु क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञ ज्ञान जो होय।
ज्ञेय ज्ञान जानन चहों केशव बोलो सोय ॥

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का स्वरूप

(१)

श्री भगवान उवाच -

ईसी देह को क्षेत्र कहें हे कौन्तेय ऐसा जानो।
क्षेत्र का ज्ञानी मत मेरा क्षेत्रज्ञ उसी का ही जानो ॥

(२)

क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मुझे ही सबमें जानो हे पारथ।
क्षेत्रज्ञ क्षेत्रका का सभी ज्ञान सच्चा ही तुम मानो पारथ ॥

(३)

इनका जन्म व गुण अवगुण औ सब प्रभाव बतलाता हूँ।
हे अर्जुन संक्षेप में सब मैं तुमको अभी सुनाता हूँ ॥

(४)

ऋषियों ने बहुभांति बखाना वेदों ने भी कहा उसे।
उक्त उक्त सूत्रोंने भी पदोंमें निश्चय कहा उसे ॥

(५)

अहं बुद्धि औ पंच तत्व अव्यक्ति प्रकृति का सुन तू मर्म।
एक मन और दस इन्द्रिय और पंच विषय है योग कर्म ॥

(६)

द्वेषेच्छा औ सुख यह देह पिण्ड चेतना धृत ये सब ।
यही क्षेत्र संक्षिप्त रूप से मैंने यहाँ कही है सब ॥

साधन ज्ञान

(७)

सरल वचन औ क्षमा भाव हिंसा दंभ औ मान रहित ।
गुरु सेवा औ शौच स्थिरता इन्द्रि मन हो संग रहित ॥

(८)

विषयों में वैराग्य भाव हो अहंकार का लेश न हो ।
जन्म मृत्यु और जरा व्याधि का सोच दोष का क्लेश न हो ॥

(९)

पत्नी पुत्र तथा गृहधन में निर्मम और निःसक्त रहे ।
इष्ट अनिष्ट प्राप्त होने पर सदा चित्त सम भाव रहे ॥

(१०)

अनन्य योग से मुझमें ही अविकल भक्ति बनी रहे ।
एकान्त देश में रहकर के विषयी जन से दूर रहे ॥

(११)

अध्यात्म ज्ञान में लीन रहे तत्व अर्थ का दर्शन सब ।
यही ज्ञान है कहते हैं अज्ञान कहें उलटे को सब ॥

ज्ञेय स्वरूप परमात्मा के स्वरूप का वर्णन और उसके ज्ञान से भक्त को भगवद्भाव की प्राप्ति

(१२)

जो ज्ञेय जानकर सुधा मिले मैं यहाँ कहूँगा तुमको वह ।
आदि रहित यह परम ब्रह्म सत असत नहीं कहलाता वह ॥

(१३)

जिसका चारों ओर हाथ पग आँख कान औ सिर समप्राप्त ।
वही ब्रह्म इस पूर्ण लोकमें सभी विश्वमें सबमें व्याप्त ॥

(१४)

इन्द्रिहीन पर इन्द्रि प्रकाशक विषयों में लिप्त नहीं रहता ।
सबका धारक पर निर्गुण है असक्त पर भोक्ता रहता ॥

(१५)

जीवों के अन्दर बाहर सब वही सकल चराचर है ।
सूक्ष्म रूप विज्ञेय नहीं रहे निकट पर दूर भी है ॥

(१६)

बटा हुआ नहिं प्राणीमें पर बटा हुआ होता प्रतीत ।
कर्ता पालक संहारक है सभीका है वह ज्ञेय अतीत ॥

(१७)

अन्धकार से परे कहता वहीं ज्योतिमें जोत भी है ।
ज्ञान ज्ञेय और ज्ञान गम्य सबके उरमें स्थित भी है ॥

(१८)

संक्षिप्त रूपसे हे अर्जुन ज्ञान ज्ञेय और क्षेत्र कहा ।
भक्त हमारा यही जानकर भाव हमारा प्राप्त रहा ॥

परमात्मा के ज्ञान सहित प्रकृति पुरुष का वर्णन

(१९)

प्रकृति रूप इन दोनों को तुम अनादि जानो हे अर्जुन ।
सभी विकारों और गुणों को प्रकृति जन्य मानो अर्जुन ॥

(२०)

कार्य, करण के उत्पन्नों में हेतु प्रकृति ही कहा गया ।
एवं सुख दुःख के भोगों में हेतु जीवात्मा कहा गया ॥

(२१)

प्रकृति जात इन त्रिगुणों का प्रकृति पुरुष करता उपभोग ।
अच्छी बुरी योनि पानेमें इन्हीं गुणों से बनता योग ॥

(२२)

बस इसी देह में पर भी है उपद्रष्टा अनुमन्ता है ।
भर्ता भोक्ता और महेश्वर तथा वही परमात्मा है ॥

(२३)

उसी भांति ले जान पुरुष को और प्रकृति को गुणों समेत ।
सदा कार्य को करता भी, कभी जन्म वो पुनि नहिं लेत ॥

(२४)

ध्यांन लगा अपने में कोई आत्माका दर्शन करते ।
अन्य ज्ञान या सांख्य योग से कोई कर्म योग करते ॥

(२५)

सांख्य कर्मके अज्ञानी उपदेश श्रवण कर भजन करें ।
सुनके तत्पर होने से वह मृत्यु रूप भव सिन्धु तरें ॥

(२६)

स्थावर हो या जंगल हो या जो भी जीव जानता है ।
क्षेत्रज्ञ क्षेत्र के हे पारथ संयोग से ही वह होता है ॥

(२७)

सम भाव हुआ सब भूतों में परमेश्वर को जो लखते हैं ।
क्षय पर भी अक्षर देखे उसे सही दृष्टि जब कहते हैं ॥

(२८)

समदर्शी वह पुरुष एक ईश्वर सर्वत्र विलखता है ।
करे न अपना आप हनन वह परम गति को पाता है ॥

(२९)

सभी कर्म को प्रकृति कर रही ऐसा जो उर रखता है ।
आत्मा करै नहीं कुछ भी वह सच्चा तत्त्व समझता है ॥

(३०)

सब सृष्टि चराचर भिन्न भिन्न एकस्थ पुरुष जो लखता है ।
जग विस्तार उसी में है वह ब्रह्म प्राप्त नर करता है ॥

(३१)

अनादि अव्यय निर्गुण अज परमेश्वर देह में रहता है ।
रह कर भी न कर्म करे न कर्म फलों में लुभता है ॥

(३२)

गगन सूक्ष्म जिमि व्याप्त सर्व पर किससे भी वह लिप्त नहीं ।
वैसे रह सर्वत्र देह से आत्मा भी है लिप्त नहीं ॥

(३३)

अखिल विश्व को रवि जैसे प्रकाशमान करता पारथ ।
इस क्षेत्र देह में आत्मा भो प्रकाशमान करता पारथ ॥

(३४)

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का अन्तर जो ज्ञान चक्षु से जाते हैं ।
वह मोक्ष यत्न इस प्रकृति से बस परम गति को जाते हैं ॥

श्री कृष्णार्जुन सम्वाद के तेरहवें चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' यह ज्ञान कर जग के रूप अनन्त ॥

इति त्रयोदश अध्याय समाप्त
ॐ तत सत् इति

श्री माधवाय नमः

चतुर्दश अध्याय

[ज्ञानी की महिमा और प्रकृति पुरुष से जगत की उत्पत्ति का, सत्व–रज-तम तीनों गुणों का भगवद् प्राप्ति के साधनों एवं गुणातीत पुरुष के लक्षणों का वर्णन]

गुणत्रय विभाग योग

ज्ञान का महिमा

(१)

श्री भगवान उवाच –

ज्ञान कहूँगा पुनः तुझे जो ज्ञान में उत्तम कहे गये ।
जिसे प्राप्ति कर ऋषि पृथ्वी से परम सिद्धि को चले गये ॥

(२)

इसी ज्ञान का आश्रय ले मेरे स्वरूप को प्राप्त करे ।
सृष्टि काल में जन्म नहीं न प्रलय काल दुख प्राप्त करे ॥

प्रकृति माता भगवान पिता

(३)

अखिल प्रकृति यह योनि है गर्भधान मुझसे होता ।
उससे फिर सब जीवों का पारथ उत्पत्ति शुरु होता ॥

(४)

भारत इन योनि समूहों में जितनी भी मूर्ति जन्म लेती ।
प्रकृति योनि में पिता रूप मुझसे ही बीज दान लेती ॥

सत्व-रज-तम तीनों गुणों के विभिन्न परिणाम

(५)

सत रज तम ये तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न होते ।
अज आत्मा को इस तन में तीनों ही संग बाँध देते ॥

(६)

तीनों में सतगुण है निर्मल निर्विकार प्रकाश करे ।
सुख और ज्ञान संग कर यह, हे अनघ जीव का फाँस करे ॥

(७)

रजगुण को रागात्मक जानों तृष्ण से उत्पन्न हुआ ।
कर्म संग में जीव को बाँधे विषयों से :ही प्रांत हुआ ॥

(८)

अज्ञान से उपजा तम पारथ इस देह को मोहित करता है ।
आलस निद्रा चिर प्रमाद में बाँध जीव को रखता है ॥

(९)

सत्व दिलाये सुख अर्जुन प्रेरक है रजगुण कर्मों का ।
ज्ञान ढाँक देता तमगुण प्रेरक प्रमाद दुष्कर्मों का ॥

(१०)

रजगुण मम जब दब जाता तो सतगुण ही पुनि बढ़ता है ।
सतरज पर तो तम बढ़ता तम सत दबकर रज बढ़ता है ॥

(११)

इस तन के सभी इन्द्रियों में ज्ञान प्रकाशित होवे जब ।
हे भरत श्रेष्ठ समझो इसमें कि सत गुण बढ़ी हुई है तब ॥

(१२)

लोभ प्रवृत्ती कर्मारम्भ, रुचि अशान्ति स्वारथ अर्जुन ।
ये रज के वढने पर होती ऐसा तुम जानो हे अर्जुन ॥

(१३)

जब अविवेक अनुधम तन में मोह प्रमाद मन उठता है ।
हे कुरुनन्दन उसी घड़ी में तम ही मन में वढ़ता है ॥

(१४)

सत्व वृद्धि के उस पल में यदि जीव देह को तजता है ।
पाता दिव्यलोक स्वागादिक जहाँ देव जन रहता है ॥

(१५)

रज वृद्धि के समय मरे तो कर्म संगियों में जाता ।
तम वृद्धि में मृत्यु प्राप्त वह नर योनि में पुनि आता ॥

(१६)

सत कर्मों का फल सुखमय सात्विक निर्मल औ ज्ञान भरे ।
रज कर्मों का फल दुखमय पर तम के तो अज्ञान भरे ॥

(१७)

ज्ञान प्राप्त होता सत से रज से लोभ प्राप्त होता ।
तम से मोह प्रमाद मिले उससे अज्ञान प्राप्त होता ॥

(१८)

सिद्धि प्राप्त यदि सत्विक है तो मध्य में रहते राजस हैं ।
नीच वृत्ति और नीच योनि में जाते जो नर तामस हैं ॥

भगवद् प्राप्ति के साधन

(१९)

यही तीन गुण कर्ता है ज्ञानी मन में लाता है ।
मुझे त्रिगुण के परे देखता मुझमें वह मिल जाता है ॥

(२०)

देह जनक इन त्रिगुणों का करे उलंघन जो प्राणी ।
मृत्यु जन्म दुख जरा मुक्त वह परमानन्द पाता ज्ञानी ॥

(२१)

जे व्यक्ति है गुणातीत लक्षण क्या उनके केशव ।
क्या आचरण उसका है हो कैसे त्रिगुण होन केशव ॥

गुणातीत पुरुषों के लक्षण

(२२)

श्री भगवान उवाच—

तम रज सत के तीन कार्य मोह प्रवृत्ति प्रकाश आदि जो ।
इनसे करै न द्वेष न चचना उर में छोह न लावे जो ॥

(२३)

उदासीन गुण से होकर विचलित चित्त न जो होता ।
सभी कार्य गुण ही करते यहीं मान अविचल होता ॥

(२४)

सुख दुख मिट्टी पाषाण काठ सबको एक समझता है ।
निंद स्तुति प्रिय अप्रिय धीरज नर एक समझता है ॥

(२५)

अपमान मान सब एक तुल्य मित्र शत्रु समझे ।
गुणातीत कहलाता वह आरम्भ त्याग सब सम समझे ॥

भगवान ही ब्रह्म आदि के आश्रय हैं

(२६)

अविचल भक्तियोग से जो जो, नित मेरी पूजा करते हैं ।
उलंघन कर सभी गुणों का ब्रह्म भाव पा जाते हैं ॥

(२७)

ब्रह्म हमारे आश्रय है मेरे आश्रय अमृत रहता ।
धर्म सनातन सुख सारे मेरे ही आश्रय ही रहता ॥

श्री कृष्णार्जुन सम्वाह के चौदहवें चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' आश्रय गहो परमानन्द अनन्त ॥

इति चतुर्दश अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत् इति

श्रीपुरुषोत्तमाय नमः

पन्द्रहवाँ अध्याय

[संसार वृक्ष भगवद् प्राप्ति के उपाय का प्रभाव सहित परमेश्वर के स्वरूप का एवं क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम के तत्व का वर्णन]

पुरुषोत्तम योग

संसार वृक्ष और भगवद् प्राप्ति के उपाय का वर्णन

(१)

श्रीभगवान उवाच—

ऊपर आदि पुरुष जड़वाले नीचे वृक्ष रूप शाखा,
संसार रूप इस पीपल को अज अविनाशी कहते हैं।
पत्ते हैं वेद रूप इसके जगत वृक्ष को मूल सहित,
जिसने तत्त्व से जाना है वेदज्ञ उसी को कहते हैं॥

(२)

ऊपर व नीचे शाख वृक्ष सब फैली हुई गुण पुष्ट हो,
ये विषय रूपी कोपलें गुणत्रय से सब सिंचित अहो।
सर्वत्र इस नर लोक में है कर्म से ही बन्ध रही,
जड़ वासना चहुँ लोक में सर्वत्र व्यापित हो रही॥

(३)

पर रूप इसका अति कठिन है ज्ञान होना सहज में,
आदि मध्य औ अन्त का स्थित नहीं है जगत में।

समता नहीं जिसकी कहीं दृढ़ मूल वाले वृक्ष पर,
जगत पीपल वृक्ष को वैराग्य दृढ़ से काट कर ॥

(४)

तब खोजिये उस ईश को जो पद परम स्थान है,
जाके जहाँ से जगत में आते नहीं निर्वाण है।
जिस ईश से यह वृक्ष जग छाई हुई है फैल कर,
उस पुरुष के 'मैं शरण हूँ मन में निश्चय सुदृढ़ कर ॥

(५)

मान औ सम्मोह मन में नष्ट जिनका है हुआ,
संग रूपी दोष से जिनका है मन जीता हुआ।
परमात्मा में मुक्त स्थित कामना नष्ट्रित हुआ,
द्वन्द से वो मुक्त ज्ञानी परम पद भागी हुआ ॥

(६)

सूर्य चन्द्रमा औ पावक करै न ताहिं प्रकाश।
जाके फिर न आईये वहीं मेरा शुभ वास ॥

(७)

जीव लोक इस देह में मेरा अंश जीव है हे पारथ।
हो प्रकृति जीव मन खिचता है ले पंच इन्द्रिया हे पारथ ॥

जीवात्मा का स्वरूप तथा कार्य

(८)

जीव त्याग तन दूज में जाये मन लिये इन्द्रियों को ज़ाता।
वायु पुष्प का गन्ध लिये वह अन्य ठौर जैसे जाता ॥

(९)
कान नैन त्वचा जिह्व नासिका मन को आश्रय करके सब ।
इसी देह में वही जीव सेवन विषयों का करता सब ॥

(१०)
तन त्यागे या उसमें रह विषय सेवते गुणों सहित ।
मूढ़ को दीखे नहीं जीव ज्ञानी हो जाने ज्ञान सहित ॥

(११)
जो योगी है यत्नशील यह हृदय में स्थित पाते हैं ।
मलिन हृदय वाले मूरख देख इसे नहीं पाते हैं ॥

प्रभाव सहित भगवान के स्वरूप का वर्णन

(१२)
जो तेज सूर्य में रहता है संसार प्रकाशित करता है ।
उसे तेज मेरा जानो जो शशि पावक में रहता है ॥

(१३)
कर प्रवेश इस धरती में शक्ति से जीव ग्रहण करता ।
और अमृतमय चन्द्र रूप से औषधियां प्रगटित करता ॥

(१४)
और प्राणियों के शरीर में जठर अग्नि हो वास करूँ ।
प्राण अपान वायु कर चहुँविधि अन्न का पाचन मैं ही करूँ ॥

(१५)
सबके हृदय में वास कर मैं ज्ञान औ स्मृति करूँ,
मुझसे ही होता नाश उनका ये यतन भी मैं करूँ ।

ज्ञेय हूँ सब वेद से औ वेद कर्ता भी मैं हूँ,
इन सबका भी तो जानने वाला सिर्फ मैं एक हूँ ।।

(१६)

क्षर अक्षर दो ही पुरुष जग में रहते आय ।
इसी देह को क्षर कहें अक्षर जीव कहाय ।।

(१७)

इनसे भिन्न उत्तम पुरुष परमात्मा कहलाता है ।
करके प्रवेश इस तीन लोक में सबका पालन करता है ।।

(१८)

मैं परे जड वर्ग सभी से जीवात्मा से उत्तम हूँ ।
अतः लोक और वेदों में कहलाता पुरुषोत्तम हूँ ।।

श्री कृष्ण–गुह्यतम पुरुषोत्तम तत्त्व

(१९)

इस तरह विदजन मुझको ही पुरुषोत्तम जाना करता है ।
वही भजे सर्वज्ञ समझ और सर्व भाव से भजता है ।।

(२०)

हे अर्जुन निष्पाप पुरुष यह गुह्यतम है जो तुझे कहा ।
इसे जान ज्ञानी बनते और हो जाते कृतार्थ महा ।।
श्री कृष्णार्जुन सम्वाद के पन्द्रहवें चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' पुरुषोत्तम भज जान पाव कर्मन्त ।।

इति पंचदश अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत् इति

*

ॐ नरनारायणाय नमः

सोलहवाँ अध्याय

[फल सहित दैवी और आसुरी सम्पदा का वर्णन तथा शास्त्र विपरीत आचरणों के त्याग और शास्त्रानुकूल आचरण के लिऐ प्रेरणा]

दैवासुर संपदविभागयोग

दैवी सम्पदा

(१)

निर्भयता औ चित्त शुद्धता आत्म ज्ञान में निष्ठा अरु ।
दान यज्ञ इन्द्रिय निग्रह तप पठन सरलता मन की अरु ॥

(२)

सत्य अहिंसा क्रोध हीनता शान्ति अनिन्दा त्याग तथा ।
लज्जा कोमलता अचपलता लोभ हीनता दया तथा ॥

(३)

तेज क्षमा धृत शौच मित्रता गुरुता औ अभिमान नहीं ।
दैवी सम्पद प्राप्त पुरुष के लक्षण होते सभी यहीं ॥

आसुरी सम्पदा तथा दैवी सम्पदा के फल

(४)

दर्प दंभ अभिमान क्रोध कटु वचन मूढ़ता है अर्जुन ।
असुर सम्पदा प्राप्त व्यक्ति के हैं ये सब लक्षण अर्जुन ॥

(५)

दैवी सम्पद से मोक्ष प्राप्त आसुरी से बन्धन मिलता है ।
प्राप्त तुझे दैवी सम्पद क्यों शोक हृदय में करता है ॥

आसुरी सम्पदा और उसका परिणाम

(६)

प्रकृति आसुरो दैवी ही इस जीव के केवल दो होती ।
विस्तार में दैवी सुना अभी अब सुनो आसुरी जो होती ॥

(७)

क्या प्रवृत्ति है क्या निवृत्ति है असुर व्यक्ति को ज्ञान नहीं ।
सत्य और आचार शौच का उनमें कोई योग नहीं ॥

(८)

वे असत्य जग कहते हैं और अनीश्वर जग कहते ।
नर नारी संयोग से उपजा काम हेतु ही जग कहते ॥

(९)

उन मति मन्द का दृष्टिकोण है आत्मा नष्ट प्राय होता ।
क्रूर कर्म औ अहित जगत को उनका जन्म जगत होता ॥

(१०)

दंभ मान औ मद से युक्त और कामना मन रखें ।
मोह भरे सिद्धान्तों का आचार भ्रष्ट होकर रखें ॥

(११)

बड़ी बड़ी चिन्ताएँ मन में मृत्यु काल तक मन रखें ।
विषय भोग ही परम लक्ष्य है हरदम मन ऐसा रखें ॥

(१२)

बन्धे हुए आशाओं से काम क्रोध सेवन करते ।
काम हेतु सब न्याय तजे वे धन संचय इच्छा करते ॥

(१३)

एक प्राप्त होने पर भी और मनोरथ मन में है ।
यह मेरा धन और इकट्ठा हो जाये यह मन में है ॥

(१४)

उस वैरी को मारा है उसे और भी मारुंगा ।
सिद्ध बली भोक्ता मैं हूँ ईश्वर मैं ही कहलाऊँगा ॥

(१५)

कुल सम्पत्ति धन वाला हूँ मेरे से कौन बड़ा होगा ।
यज्ञ करुंगा दान करुंगा कह मूरख यूँ खुश होगा ॥

(१६)

भ्रम में बँधा चित्त मोहित हो मोह जाल में फँसा हुआ ।
काम के भोगी ये पातक तो सदा नरक में पड़ा हुआ ॥

(१७)

धन मान मद में मस्त हैं ऐसे जो प्रशंसक असुर ।
अपने नाम के हेतु यज्ञ करते पाखंडी हो दंभ असुर ॥

(१८)

अहंकार बल तथा क्रूरता क्रोध में भरे सदा रहते ।
मैं सभी देह में रहता हूँ पर मेरी निंदा हो करते ॥

(१९)

अशुभ नीच कर्मों के करता रखते मुझसे द्वेष सदैव ।
अति नीच योनियों में पारथ इन्हें डालता रहूँ सदैव ॥

(२०)

अति नीच योनियाँ पाकरके वे जनन अनेक भटकते हैं ।
मुझे नहीं पाते अर्जुन वे घोर नरक में गिरते हैं ॥

शास्त्र विरुद्ध आसुरी आचरणों के त्याग और शास्त्रानुकूल देवी आचरणों के सम्पादन के लिए प्रेरणा

(२१)

काम क्रोध और लोभ नरक के द्वारे हैं तीन प्रकार
अतः त्याग दो इन तीनों को ये अपना ही है नाशनहार ॥

(२२)

अन्धकारमय तीनों से भी मुक्त हुआ है जो अर्जुन ।
निज कल्याण के साधन से परम गति पाता अर्जुन ॥

(२३)

तव शास्त्रों का विधि विधान जो निज ईच्छा में चलता है ।
उसे न मिलती सिद्ध और सुख न उत्तमगति ही पाता है ॥

(२४)

कार्य अकार्य व्यवस्था में इस हेतु शास्त्र है मुख्य प्रमाण ।
शास्त्र निहित कर्मों को जानो उन्हें ही करो सदा सम्मान ॥

श्री कृष्णार्जुन सम्वाद के सोलहवें चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' प्रभु भजन कर आसुर देह नशन्त ॥

इति षोडश अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत इति

श्रीयोगेश्वराय नमः

सत्रहवाँ अध्याय

[त्रिविध श्रद्धा का और शास्त्र विपरीत घोर तप करने वालों का वर्णन, आहार, यज्ञ, तप और दान के पृथक् पृथक् भेद तथा ॐ तत् सत् प्रयोग की व्याख्या]

श्रद्धात्रय विभागयोग

शास्त्रविधिरहित श्रद्धा के विषय में अर्जुन का प्रश्न

(१)

श्री अर्जुन उवाच–

छोड शास्त्र की विधि जो नर श्रद्धायुक्त यज्ञ करें मतिमान ।
उनकी निष्ठा सत्व कहें या रज तम कहें उसे भगवान ॥

त्रिविध श्रद्धा

(२)

श्री भगवान उवाच –

उपजी प्राणी के स्वभाव से सुन तीन तरह की श्रद्धा है ।
एक सात्विकी और राजसी तथा तामसी श्रद्धा है ॥

(३)

निज स्वरूप अनुरूप सभी की श्रद्धा होती है पारथ ।
जीसकी जैसी श्रद्धा हो, वैसा ही उसे जान पारथ ॥

त्रिविध पूजा

(४)

सात्विक पूजें देवों को यक्ष राक्षसों को राक्षस ।
भूत प्रेत को जो पूजे वे ही कहलाते हैं तामस ॥

आसुरी घोर तप

(५)

जो नर करते कठिन तपस्या शास्त्र रीति को तज के वो।
अहंकार औ दम्भ विषय औ कामासक्ति होकर वो ॥

(६)

तन स्थित भूतों को मुझको जो है तन के अन्दर गूढ ।
कृश करते मुझको अर्जुन वो नर हैं निश्चय आसुर मूढ ॥

त्रिविध आहार

(७)

सबको प्रिय आहार तथा तप और दान हैं तीन प्रकार ।
सुनो पार्थ मैं कहता हूँ उन भेदों का कर विस्तार ॥

(८)

आयु सत्व बल और आरोग्य सुख और प्रीत बढावनहार ।
रसमय चिकने चिर स्थायी रुचिकर सात्विक जन आहार ॥

(९)

कडुऐ खटे नमक युक्त गरम रुक्ष तीखा भोजन ।
दुख चिन्ता औ रोग प्रदायक राजसो को प्यारा भोजन ॥

(१०)

जो भोजन अधपका निरस दुर्गन्ध युक्त औ वासी है ।
अशुचि औ जूठा भोजन उनको प्रिय जो तामसी है ॥

त्रिविध यज्ञ

(११)

कर्तव्य मान फल हीन भाव से जो शास्त्र रीति से करते हैं ।
अति शांत मन से किया गया उस यज्ञ को सात्विक कहते हैं॥

(१२)
फल की आश लिये मन में जो दंभ आचरण करते हैं।
हे भरत श्रेष्ठ निश्चय मानो यह यज्ञ राजसी करते हैं ॥
(१३)
विना अन्न विधि हीन मन्त्र विन और दक्षिणा विन करते।
श्रद्धा रहित इस तरह का यज्ञ तामस जन ही हैं करते॥

त्रिविध भेदसे शारीरिक वाङ्मय और मानसिक तप

(१४)
देव विप्रगुरु ज्ञानी का और पूजन शौच सरलता सब।
दृढ ब्रह्मचर्य अहिंसा को शारीरिक तप ही कहते सब॥
(१५)
हितकर सत्य वचन प्रियकर जिनमें उद्वेग नहीं रहते।
वेद पठन अभ्यास पार्थ उसको वाणी का तप कहते॥
(१६)
चित्र प्रसन्नता सौम्य भाव और मौन तथा निग्रह मन का।
शुद्ध हृदय और परम भाव इसे ही कहते तप मन का॥
(१७)
ये तीन तरह के तप अर्जुन फल त्याग पुरुष यदि करते हैं।
शान्ति और श्रद्धा से हो तो सात्विक तप ही कहते हैं॥
(१८)
पूजा तप सत्कार मान हित दंभ रहित जो होते हैं।
अथिर अनिश्चित चञ्च हैं जो ये राजस तप ही होते हैं॥

(१९)

अपने को पीड़ा देकर मूढ भाव का तप अर्जुन।
पर विनाश के इस तप को तामस तप कहते अर्जुन॥

त्रिविध दान

(२०)

देना कर्तव्य दान औ प्रत्युपकार का नहीं ध्यान।
देश काल औ पात्र वियार देवे वो हैं सात्विक दान॥

(२१)

निज हित चाह के बदले में फल लालच का ऐसा दान।
करके क्लेश दिया जाये ए कहते उसको राजस दान॥

(२२)

देश काल को विना विचारे जो अपात्र को दीजे दान।
विना किये सत्कार दिये यदि इसको कहते तामस दान॥

(२३)

तीन तरह के नाम ब्रह्म के ॐ और तत् सत् ये हैं।
आदि में उनसे रचे गये ब्रह्म वेद औ यज्ञ जो हैं॥

(२४)

अतः ॐ का उच्चारण कर यज्ञ दान तप सभी क्रिया।
ब्रह्मवादियों के विधान से आरम्भ हुए हैं सभी क्रिया॥

(२५)

तत् पढकर फल को तज के तप दान और यज्ञादिक कार्य।
विविध रूप से करते हैं जो मोक्ष हेतु अभिलाषी आर्य॥

(२६)

साधु भाव में सत्य भाव में सत् का होता है उपयोग ।
उत्तम कर्मों में पारथ इस सत् शब्द का है प्रयोग ॥

(२७)

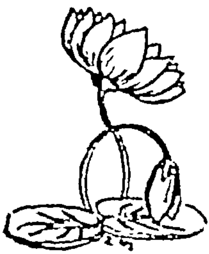
निष्ठा दान यज्ञ तप में स्थित वो सत् कहलाती है ।
ईश्वर अर्थ सभी कार्य भी सत् हो तो कहलाती है ॥

(२८)

श्रद्धा रहित दान तप यज्ञ जो करते या करवाते हैं ।
असत् उसे कहते अर्जुन वो सुख को नहीं दिलाते हैं ॥

श्रीकृष्णार्जुन सम्वाद के सत्रहवें चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' श्रद्धा रखो निज कल्याण होवन्त ॥

इति सप्तदश अध्याय समाप्त
ॐ तत् सत् इति



श्री कृष्णाय नमः

अट्ठारहवाँ अध्याय

[त्याग का, सांख्य सिद्धान्त का, फल सहित वर्ण धर्म का निष्काम कर्म योग का, शरणागति को तथा गीता के महात्म्य का वर्णन]

मोक्ष संन्यासयोग

संन्यास और त्याग के संबन्ध में अर्जुन क

(१)

अर्जुन उवाच –

प्रभु इच्छा मुझे जानने की संन्यास त्याग तत्त्व क्या है ।
करके कृपा कहें केशव कि भिन्न भिन्न दोनों क्या है ॥

त्याग तत्त्व और त्रिविध त्याग

(२)

श्री भगवान उवाच –

सकाम कर्म को तजना ही पण्डित जन कहते हैं संन्यास ॥
पर ज्ञानी त्याग उसे कहते पारथ जब तजों फलों की आश ॥

(३)

सभी कार्य हैं दोष रूप ये विज्ञ त्याज्य बतलाते हैं ।
यज्ञ दान तप त्याज्य नहीं ऐसा भी कोई बताते हैं ॥

(४)

हे भारत इस त्याग विषय में निश्चय मेरा सुनो अभी ।
तीन तरह का त्याग कहा है पुरुषव्याघ्र तुम सुनो अभी ॥

(५)

यज्ञ दान तप त्याज्य नहीं है ये है करने योग्य सदा ।
तप यज्ञ दान तो करते हैं ये विज्ञ जनों को शुद्ध सदा ॥

(६)

संग और फल त्याग कर्म सब जानों इनको ही कर्तव्य ।
यह उत्तम है मत मेरा औ पालनीय निश्चय है भव्य ॥

(७)

नियत कर्म को तज देना ये योग्य नहीं लगता पारथ ।
मात्र मोहवश उसे त्यागना तामस त्याग कहा पारथ ॥

(८)

इस काया को कष्ट मिलेगी दुखमय जान कर्म त्यागे ।
तो उसे राजसी त्याग कहा है निष्फल है यदि वह त्यागे ॥

(९)

नियत कर्म कर्तव्य मानकर निश्चित कर्म सदा करते ।
संग और फल त्याग करे तो उसे त्याग सात्विक कहते ॥

(१०)

अशुभ कर्म से द्वेष नहीं औ शुभ कर्मों से रहे न युक्त ।
वह त्यागी है सत्वनिष्ठ है मेधावी है संशय मुक्त ॥

(११)

तनधारी से सहसा ही कर्म त्याग नहीं हो सकता ।
पूर्ण फलों का त्यागी ही सच्चा त्यागी कहला सकता ॥

(१२)

इष्ट अनिष्ट है और मिश्र है कर्म फलों के तीन प्रकार ।
सकाम पाते मरने पर त्यागी को कभी न पांडुकुमार ॥

सांख्य सिद्धान्तानुसार कार्य और कर्ता का स्वरूप

(१३)

सम्पूर्ण कर्म की सिद्धि में जो कारण पांच है कहे गये ।
मुझसे सुनो महावाहों जो सांख्य शास्त्र में कहे गये ॥

(१४)

अधिनिष्ठा है प्रथम दूसरा कर्ता है और करण तीसरा तथैव ।
नाना चेष्टायें चौथा है और पांचवां कारण दैव ॥

(१५)

जो भी कर्म पुरुष करता है तन मन वचन के द्वारा सब ।
यही पाँच कारण कहते अन्याय न्याय हो उनको सब ॥

(१६)

ऐसा होने पर भी नर यदि अपने को कर्ता माने ।
मलिन वुद्धि के कारण ही अज्ञानी तथ्य को न जाने ॥

(१७)

जिन्हें अहंकृति भाव नहीं और वुद्धि लिप्त नहीं कर्मों में ।
नहिं मरता यदि लोक हने, न ही वन्धता वह कर्मों में ॥

(१८)

कर्म प्रेरणा तोन तरह को ज्ञान ज्ञेय औ ज्ञाता है ।
कर्ता कर्म करण तीनों से कर्म संग्रहण होता है ॥

(१९)

गुण के कारण तीनों तरह के ज्ञान कर्म औ कर्ता जो ।
शान्त चित्त से सुनो सभी वो सांख्य शास्त्र में कहा है जो ॥

त्रिविध ज्ञान

(२०)

पृथक पृथक सब भूतों में जो लखे एक अविनाशी भाव ।
भेद हीन उस ज्ञान से देखे पारथ सात्विक ज्ञान जनाव ॥

(२१)

जिसके द्वारा विविध भाव जीवों में भिन्न भिन्न दीखे ।
अर्जुन वह ज्ञान राजसी है मानों तुम ऐसा ही दीखे ॥

(२२)

उलट ज्ञान बताये जो कि यह शरीर ही सब कुछ है ।
युक्त रहित तत्वार्थ रहित वह कुछ ज्ञान तामस ही है ॥

त्रिविध कर्म

(२३)

राग द्वेष से वर्जित हो शास्त्र नियत आसक्ति रहित ।
फल की जिसमें चाह नहीं वह कर्म सत्व है जन के हित ॥

(२४)

अहंकार से भरा हुआ फल हेतु कर्म जो कर्म करता है ।
अतिशय श्रम लेने वाला वह राजस ही कहलाता है ॥

(२५)

हिंसा पौरुष हानि न सोचे, न परिणाम को जो अर्जुन ।
किया जाय आरम्भ मोह से तामस कर्म वही अर्जुन ॥

(२६)

हो न जिसे असक्ति अहंकृति वह उत्साही धीरजवान ।
सिद्धि असिद्धि विकार न लावे सह कर्ता है सत्व प्रधान ॥

(२७)

विषयासक्त कर्म फल इच्छुक अशुचि अपावन हिंसक है ।
हर्ष शोक से भरा हुआ वह कर्ता राजस सूचक है ॥

(२८)

खल अविवेकी कर्म हीन आलस दम्भों से भरा हुआ ।
दीर्घ सूत्री और कष्ट दे तामस कर्ता है कहा हुआ ॥

त्रिविधि बुद्धि

(२९)

बुद्धि और धृति के अर्जुन भेद तीन तरह के सुन ।
पृथक पृथक है पूर्ण रूप से करता है वर्णन तू सुन ॥

(३०)

प्रवृत्ति निवृत्ति और कार्य अकार्य भय अभय सभी को बतलाती ।
जो बँध मोक्ष को बतलावे वो बुद्धि सात्विकी कहलाती ॥

(३१)

जिसमें भेद अधर्म धर्म का अकार्यकार्य का भेद भी है ।
जिसमें ज्ञान नहीं निर्णय सुन वही राजसी बुद्धि है ॥

(३२)

अधर्म को धर्म बताती है उलटा अर्थ और अज्ञान ।
तम से व्याप्त हुई हो अर्जुन बुद्धि वही तामसी जान ।

त्रिविधि धृति

(३३)

अचल हुई जिस धृति से है मन प्राण इन्द्रियों के व्यापार ।
जो योग से धारण करे सदा वह धृति सात्विक कहते आचार ॥

(३४)

जिस धृत के द्वारा हे अर्जुन फल इच्छा से आतुर मानस ।
धारण करता है काम अर्थ औ धर्म वही धृति है राजस ॥

(३५)

जिस धृति से हो उन्माद और भय शोकस्वप्न होते रहते ।
दुष्ट बुद्धि का व्यक्ति तजे न उसे तामसी धृति कहते ॥

त्रिविधि सुख

(३६)

तीन तरह के सुख भी मुझसे अब सुन लो पुरुषश्रेष्ठ भारत ।
जिसके पालन से अभ्यासी अन्त करे दुख का भारत ॥

(३७)

हो प्रतीत विष तुल्य आदि में अन्त सुधा सम हे अर्जुन ।
आत्मबुद्धि के हर्षों से उपजा वह सुख सात्विक अर्जुन ॥

(३८)

विषय इन्द्रियों से जन्में, जो आगे सुधा तुल्य लगते ।
किन्तु जहर है उसका फल, हा उसे राजसी सुख कहते ॥

(३९)

पर आदि और अन्त में भी जो मोहित आत्मा को करता है ।
निद्रा आलस प्रमाद जनित वह तामस सुख कहलाता है ॥

फल सहित वर्ण धर्म का वर्णन

(४०)

पृथ्वी औ उस स्वर्ग में कोई, या देवों में कोई हो ।
प्रकृति जन्य इन तीन गुणों से नहीं बचा है कोई हो ॥

(४१)

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र के सभी परंतप कर्म–आचार ।
अलग अलग हैं कहे हुए प्रकृति तथा गुण के अनुसार ॥

(४२)

शम दम तप औ शोच क्षमा औ सरल भाव विज्ञान ज्ञान ।
कर्मों में आस्तिकता हो, वह ब्रह्म कर्म स्वभाविक जान ॥

(४३)

शौर्य तेज और धीर दक्षता युद्ध छेड़ के हटना नहिं ।
दान और स्वामित्व भाव कर्म कहे क्षत्रिन के यहिं ॥

(४४)

खेती गोपालन औ व्यापार वैश्यों के स्वाभाविक कर्म ।
सब वर्णों की सेवा करना शूद्रों के हैं ऐसे कर्म ॥

(४५)

निज निज कर्मों में लगा हुआ, नर सिद्धि को पा जाते हैं ।
वही सुनो मुझसे पारथ, जिस कर्म से सिद्ध पाते हैं ॥

(४६)

जिससे प्राणिमात्र पैदा है, जिस ईससे व्याप्त जगत है सब ।
निज कर्मों से उसे पूज कर नर पा लेता सिद्धि सब ॥

(४७)

पर धर्म श्रेष्ठ यदि हो तो भी निज निगुण धर्म भला अपना ।
प्रकृति नियत यदि कर्म करे तो पाप नहीं लगता सुनना ॥

(४८)

सहज कर्म यदि दोष भरा हो तो भी त्यागो न पारथ ।
धुँवा से अग्नि ढँकी है जैसे कर्म दोष से त्यों पारथ ॥

नैष्कर्म्य सिद्धि

(४९)

स्पृहाहीन मन जीत लिया, सदा असक्त बुद्धि जिसकी ।
संन्यास योग से हे पारथ नैष्कर्म्य सिद्धि पाता उसकी ॥

(५०)

सिद्धि प्राप्त होकर फिर जसे, मनुज ब्रह्म में होता लिप्त ।
जो है निष्ठा पराज्ञान की मुझसे सुनो सभी संक्षिप्त ॥

ज्ञान की परनिष्ठा या पराभक्ति के साधन, ब्रह्म प्राप्त पुरुष के परा (प्रेमा) भक्ति के द्वारा भगवान को पूर्ण रूप से जानकर उनमें प्रवेश का वर्णन

(५१)

मन नियमित कर सात्विक धृति से होकर शुद्धि बुद्धि से युक्त ।
तजकर शब्दादिक विषयों को होकर रागद्वेष से मुक्त ॥

(५२)

मित भोजन एकान्त वास कर मन वच काया जीता हो ।
ध्यान योग का नित परायण वैराग्य पूर्ण को पाया हो ॥

(५३)

अहंकार बल दर्प काम औ संग्रह और रागों को तज ।
ब्रह्मप्राप्ति के योग्य वही जो शान्त हुआ है ममता तज ॥

(५४)

ब्रह्म भूत जो हर्षित मन है चाह नहीं न शोक करे ।
सब प्राणी को सम गिनता वह मेरी भक्ति प्राप्त करे ॥

(५५)

कितना हूँ मैं और कौन हूँ भक्ति से जाने तत्त्व पुरुष ।
तदनन्तर प्रवेश कर जाता मुझमें वह तत्वज्ञ पुरुष ॥

समर्पण भाव युक्त पूर्ण शरणागति के लिये आदेश
गीता के महान उपदेश का उपसंहार

(५६)

सभी कर्म करता करता नर मेरा ही आश्रय जो लेता ।
मेरी अनुकम्पा से पारथ शाश्वत अव्यय पद लेता ॥

(५७)

मन से सभी कर्म अर्पण कर मुझमें तत्पर हो पारथ ।
बुद्धियोग का आश्रय लेकर सतत चित्त मुझसे पारथ ॥

(५८)

मेरी अनुकम्पा से पारथ पार करोगे सारे कष्ट ।
अहंकार वश सुना नहीं तो अवश्यमेव तू होगा नष्ट ॥

(५९)

अहंकार वश हो कर यदि तू युद्ध नहीं रण करता है ।
तो प्रकृति तुझे लड़ा देगी मिथ्या निश्चय तू करता है ॥

(६०)

अपने स्वभाविक कर्मों से बँधा हुआ है तू पारथ ।
परवश होकर कर्म करोगे जिसको त्याग रहा पारथ ॥

(६१)

सब जीवों के हृदय देश में वास ईश का है पारथ ।
देह यन्त्र आरुढ़ जीव को माया से चला रहा पारथ ॥

(६२)

सर्व भाव उसमें होकर के उसका गहो शरण अर्जुन ।
उसकी कृपा पात्र बनकर शास्वत पद पा लो अर्जुन ॥

(६३)

गुह्यतम से गुह्यतम अर्जुन मैने ज्ञान कहा तुमको ।
पूर्ण रूप से अध्ययन कर फिर करो जो इच्छा हो तुमको ॥

(६४)

पुनः सुनो तुम गोपनीय रहस्यमयी जो कहता हूँ ।
प्रिय तुम हो ईष्ट भक्त हो तेरी ही हित में कहता हूँ ॥

(६५)

मन मुझमें धरि भक्ति करि पूज मोहिं नम मोहिं ।
अन्त मुझे ही पायेगा सत्य कहूँ मैं तोहिं ॥

(६६)

छोड़ सभी धर्मों को जग के मेरी एक शरण तू आ ।
सभी पाप से मुक्त करूँगा पारथ मन में शोक न ला ॥

इस सर्व गुह्यतम रहस्य को केवल भक्तों प्रकट करना चाहिए

(६७)

तुझे दिया उपदेश जो मैंने न कभी सुनाना ऐसों को ।
भक्ति-रहित तपहीन सुने न, मेरे निंदक वालों को ॥

(६८)

जो मेरी इस परम रहस्य को मेरे भक्तों में कथन करे ।
परम भक्ति करके मेरी, मुझे असंशय प्राप्त करे ॥

(६९)

पुरुषों में उससे बढ़कर मुझको है कोई श्रेष्ठ नहीं ।
उससे प्यारा इस जग में मुझको है प्यारा और नहीं ॥

गीता शास्त्र की महिमा

(७०)

हम दोनों का धर्मयुक्त सम्वाद पढ़ेगा जो पारथ ।
मैं समझूँगा ज्ञान यज्ञ से मुझको पूजा है पारथ ॥

(७१)

दोषदृष्टि से रहित भक्तिमय जो इसको नित सुनता है ।
सभी पाप से मुक्त हुआ वह श्रेष्ठ लोक में जाता है ॥

मोहनाश के सम्बन्ध में अर्जुन से भगवान का प्रश्न और अर्जुन की स्वीकृति

(७२)

तुमने जो सुना वचन मेरा एकाग्र चित्त से हे पारथ ।
अज्ञान और यह मोह तुम्हारा नष्ट हुआ क्या हे पारथ ॥

(७३)

अर्जुन उवाच –

आपके प्रसाद से हे अच्युत गया मोह संशय सारा ।
स्थित हूँ सुधि आई मैं वचन करूँगा अब सारा ॥

संजय का महान हर्ष

(७४)

संजय उवाच –

इस तरह श्रीकृष्णर्जुन का सम्वाद सुना मैंने राजन ।
अद्‌भुत था रोमांचित था हर्षक अतिशय था हे राजन ॥

(७५)

व्यास कृपा से दिव्य दृष्टि पा मैंने सुना परम यह योग ।
योगेश्वर साक्षात कृष्ण ने स्वयं बताया है यह योग ॥

(७६)

अद्‌भुत यह सम्वाद सुपावन श्रीकृष्णार्जुन का:हे राजन ।
सुमिरि सुमिरि मैं बार बार हर्षित होता हूँ हे राजन ॥

(७७)

हरि के उस अद्‌भुत–स्वरूप को स्मृत कर मै पुनः पुनः ।
विस्मय गहन और होता है और हर्ष भी पुनः पुनः ॥

(७८)

जहाँ कृष्ण योगेश्वर है और धनुर्धर पार्थ जहाँ ।
नीति विभूति विजय श्री रहती मेरे मत से सभी वहाँ ॥

श्रीकृष्ण सम्वाद के अष्टादश चरण का अन्त ।
'राधाकृष्ण' नित गीता भज दर्शन पाव अनन्त ॥

इस प्रकार श्रीमद्-भगवद् कृष्णगीता उपनिषद् ब्रह्मविद्या योगशास्त्र में श्रीकृष्णार्जुन सम्वाद में मोक्ष संन्यासयोग नामक अष्टादश अध्याय समाप्त

श्री ॐ तत् तत् इति

